श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १३ ।

अंक ९-१० ।

जैनहितैषी ।

सितम्बर, अक्टूबर १९१७ ।

विषय सूची ।

१	ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति–ले० बाबू सूरजभान वकील ...	३७५
२	परामर्श (कविता)–ले०, पं० रामचरित उपाध्याय ...	३८७
३	समाजसुधारमें सबसे अधिक डर किन लोगोंसे है?–ले०–बाबू निहालकरणजी सेठी एम. एस. सी. ...	३८८
४	विचित्र व्याह (काव्य)–ले०, पं० रामचरित उपाध्याय ...	३९१
५	दर्शनसार-विवेचनाका परिशिष्ट	३९४
६	हमारे देशका व्यभिचार (उद्धृत)–ले०, ठाकुर शिवनन्दन सिंह बी. ए.	४०२
७	आदिपुराणका अवलोकन—ले०, बाबू सूरजभान वकील	४१०
८	प्रमा लक्षण—ले०, मुनि जिनविजयजी	४१७
९	जैनजातियोंके पारस्परिक बेटी व्यवहारमें हानिकी कल्पना	४२४
१०	पुस्तक-परिचय	४२८
११	पछतावा (गल्प)–ले०, श्रीयुत प्रेमचन्दजी	४३२
१२	जैनजातिके क्षयरोग पर एक दृष्टि—लेखक—बाबू रतनलाल जैन बी. ए. एल. एल. बी.	४४१
१३	गोलमालकारिणी सभाके समाचार–ले० श्रीयुत गड़बड़ानन्द शास्त्री.	४५२
१४	शास्त्रप्रामाण्य	४६०
१५	विविध प्रसङ्ग	४६१

संपादक—नाथूराम प्रेमी ।

मुंबईवैभव प्रेस.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रार्थनायें ।

१. जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसमें जो समय और शक्तिका व्यय किया जाता है वह केवल अच्छे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२. जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको जितने मित्रोंको वे पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।

३. यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव न धारण करनेके लिए सविनय निवेदन है।

लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

भारतविख्यात ! हजारों प्रंशसापत्र प्राप्त !

अस्सी प्रकारके बात रोगोंकी एकमात्र औषधि

महानारायण तैल।

हमारा महानारायण तैल सब प्रकारकी वायु-**की पीड़ा, पक्षाघात,** (लकवा, फालिज) गठिया **सुन्नवात, कंपवात,** हाथ पांव आदि अंगोंका **जकड़ जाना,** कमर और पीठकी भयानक पीड़ा, **पुरानीसे** पुरानी सूजन, चोट, हड्डी या रगका **दबजाना, पिचजाना** या टेढ़ी तिरछी होजाना **और** सब प्रकारकी अंगोंकी दुर्बलता आदिमें बहुत बार उपयोगी साबित होचुका है।

मूल्य २० तोलेकी शीशीका दो रुपया। डा० म० ॥) आना।

❀ वैद्य ❀

सर्वोपयोगी मासिक पत्र।

यह पत्र प्रतिमास प्रत्येक घरमें उपस्थित होकर एक वैद्य या डाक्टरका काम करता है। इसमें स्वास्थ्य-रक्षाके सुलभ उपाय, आरोग्य शास्त्रके नियम, प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकके सिद्धान्त, भारतीय वनौषधियोंका अन्वेषण, स्त्री और बालकोंके नकीठ रोगोंका इलाज आदि अच्छे २ लेख प्रकाशित होते हैं। इसकी वार्षिक फीस केवल १) रु० मात्र है।

नमूना मुफ्त **मंगाकर** देखिये।

पता—वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर

आयुर्वेदोद्धारक—औषधालय, **मुरादाबाद।**

आढ़तका काम।

बंबईसे हरकिस्मक माल मँगानेका सुभीता।

हमारे यहांसे बंबईका हरकिस्मका माल किफायतके साथ भेजा जाता है। तांबें व पीतलकी चद्दरें, सब तरहकी मशीनें, हारमोनियम, ग्रामोफोन, टोपी, बनियान, मोजे, छत्री, जर्मन-सिलवर और अलुमिनियमके बर्तन, सब तरहका साबुन, हरप्रकारके इत्र व सुगन्धी तेल, छोटी बड़ी घड़ियाँ, कटलरीका सब प्रकारका सामान, पेन्सिल कागज़, स्याही, हेण्डल, कोरी कापी, स्लेट, स्याहीसोख, ड्राइंगका सामान, हरप्रकारकी देशी और विलायती दवाइयाँ, काँचकी छोटी बड़ी शीशियोंकी पेटियाँ, हरप्रकारका देशी विलायती रेशमी कपड़ा, सुपारी, इलायची, मेवा, कपूर आदि सब तरहका किराना, बंबईकी और बाहरकी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी पुस्तकें, जैन पुस्तकें, अगरबत्ती, दशांगधूप, केशर, चंदन आदि मंदिरोपयोगी चीजें, तरह तरहकी छोटी बड़ी रंगीन तसवीरें, अपने नामकी अथवा अपनी दुकानके नामकी मुहरें, कार्ड, चिट्ठी, नोटपेपर, मुहूर्तकी चिट्ठीयाँ (कंकुपत्रिका) आदि, हरकिस्मका माल होशयारीके साथ वी. पी. से रवाना किया जाता है। एक बार व्यवहार करके देखिये। आपको किसी तरहका धोका न होगा।

हमारा सुरमा और नमकसुलेमानी अवश्य मँगाइए। बहुत बढ़िया हैं।

पता—पूरणचंद नन्हेंलाल जैन।

c/o जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, पो० गिरगांव, बम्बई।

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

तेरहवाँ भाग । अंक ९-१०

जैनहितैषी

भाद्र, आश्विन २४४३. सितम्बर, अक्टू० १९१७.

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी ॥

ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति ।

[लेखक, श्रीयुत बाबू सूरजभानजी वकील ।]

जैनसमाजका विश्वास है कि, जब भोगभूमि नहीं रही और कर्मभूमिका प्रारंभ हुआ, तब भगवान् आदिनाथने उस समयके सभी मनुष्योंको क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंमें विभाजित कर दिया था । इसके बाद भरतमहाराजने अपनी दिग्विजययात्राके पश्चात् इन्हीं तीनों वर्णोंके लोगोंमेंसे कुछ धर्मात्माओंको छाँटा और उन्हें ब्राह्मण करार दिया । तबसे चौथा वर्ण भी हो गया । इसके पहले न तो ब्राह्मण वर्ण ही था और न कोई ब्राह्मण ही था । इसीके अनुसार हमारे भाइयोंकी यह भी श्रद्धा है कि, इस समय जितने भी वेदपाठी ब्राह्मण मौजूद हैं, वे सब भरतमहाराजके बनाये हुए ब्राह्मणोंकी ही सन्तानमेंसे हैं जो चौथे कालमें तो जैनधर्मके अनुयायी थे; पर पीछे पंचमकालमें श्रद्धाभ्रष्ट होकर जैनधर्मके द्वेषी बन गये हैं । परन्तु आदिपुराणके ३८ वेंसे लेकर ४२ वें तक पाँच पर्वोंका स्वाध्याय करनेसे यह विश्वास ठीक नहीं मालूम होता है और एक बहुत ही विलक्षण बातका पता लगता है । यह लेख उसी विलक्षणताको प्रकट करनेके लिए लिखा जाता है । पाठकोंको चाहिए कि, वे इसे खूब एकाग्र होकर पढ़ें ।

जब भरत महाराज ब्राह्मण वर्ण निर्माण कर चुके थे, तब उन्होंने अपने दरबारमें आये हुए समस्त राजाओंको एक लम्बा चौड़ा उपदेश दिया था । उसका अभिप्राय यह है कि– “ जो अक्षरम्लेच्छ देशमें रहते हों, राजाओंको चाहिए कि उनपर सामान्य किसानोंके समान कर लगावें । जो वेदोंके द्वारा अपनी आजीविका करते हैं और अधर्मरूप अक्षरोंको सुनासुना कर लोगोंको ठगा करते हैं वे अक्षरम्लेच्छ कहलाते हैं । पापसूत्रोंसे जीविका करनेवाले अक्षरम्लेच्छ हैं । क्यों कि वे अपने अज्ञानके बलसे अक्षरोंसे उत्पन्न हुए अभिमानको धारण करते हैं । हिंसामें प्रेम मानना, मांस खानेमें प्रेम मानना, जबर्दस्ती दूसरोंका धन हरण करना और भ्रष्ट होना यही म्लेच्छोंका आचरण है और ये ही सब आचरण इनमें मौजूद हैं । ये अधम द्विज (ब्राह्मण) अपनी जातिके अभिमानसे हिंसा करने और मांस खाने आदिको पुष्ट करनेवाले वेदशास्त्रके अर्थको बहुत कुछ मानते हैं । अतः इनको

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामान्य प्रजाके ही समान मानना चाहिए, अथवा सामान्य प्रजासे भी कुछ निकृष्ट मानना चाहिए। ये लोग माननेके योग्य नहीं हैं, किन्तु वे ही द्विज (ब्राह्मण) मानने योग्य हैं जो अरहंत-देवके सेवक हैं। यदि ये अक्षरम्लेच्छ यह कहने लगें कि लोगोंको संसारसे पाप करनेवाले हम ही हैं, हम ही देव ब्राह्मण हैं और सब लोग हम ही-को मानते हैं, इस वास्ते हम राजाको अपने फसलका कुछ भी हिस्सा नहीं देंगे, तो उनसे पूछना चाहिए कि अन्य वर्णोंसे तुममें क्या विशे-षता है और क्यों है ? जातिमात्रसे तो कोई बड़प्पन हो नहीं सकता, रहे गुण, सो उनका तुममें बडप्पन है नहीं; क्यों कि तुम नामके ही ब्राह्मण हो। गुणोंमें तो वे ही बड़े हैं, जो व्रतोंको धारण करनेवाले जैन ब्राह्मण हैं। तुम लोग व्रत-रहित, नमस्कार करनेके अयोग्य, निर्लज्ज, पशुओंकी हिंसा करनेवाले और म्लेच्छोंके आचरणमें तत्पर हो, इस लिए तुम किसी तरह भी धार्मिक द्विज (ब्राह्मण) नहीं हो। राजाओंको उचित है कि, वे इन अक्षर म्लेच्छोंसे साधारण प्रजाके ही समान अनाजका भाग लेकर इनको सबके समान मानें। ज्यादा कहनेकी जरूरत नहीं है। राजा-ओंको उत्तम जैन द्विजों (ब्राह्मणों) के सिवाय और किसीको भी पूज्य नहीं मानना चाहिए। "

ये केचिच्चाक्षरम्लेच्छाः स्वदेशे प्रचरिष्णवः ।
तेऽपि कर्षकसामान्यं कर्तव्याः करदा नृपैः ॥ १८१ ॥
तान्प्राहुरक्षरम्लेच्छा येऽमी वेदोपजीविनः ।
अधर्माक्षरसम्पाठैर्लोकव्यामोहकारिणः ॥ १८२ ॥
यतोऽक्षरकृतं गर्वमविद्याबलतस्तके ।
वहंत्यतोऽक्षरम्लेच्छाः पापसूत्रोपजीविनः ॥ १८३ ॥
म्लेच्छाचारो हि हिंसायां रतिर्मांसाशनेऽपि च ।
बलात्परस्वहरणं निर्दूतत्वमिति स्मृतं ॥ १८४ ॥
सोऽस्त्यमीषां च यद्वेदशास्त्रार्थमधमद्विजाः ।
तादृशं बहु मन्यंते जातिवादावलेपतः ॥ १८५ ॥
प्रजासामान्यतैवैषां मता वा स्यान्निकृष्टता ।
ततो न मान्यताऽस्त्येषां द्विजा मान्याःस्युरार्हताः॥ १८६॥
वयं निस्तारका देवब्राह्मणा लोकसम्मताः ।
धान्यभागमतो राज्ञे न दद्म इति चेन्मतं ॥ १८७ ॥
वैशिष्ट्यं किं कृतं शेषवर्णेभ्यो भवतामिह ।
न जातिमात्राद्वैशिष्ट्यं जातिभेदाप्रतीतितः॥ १८८ ॥
गुणतोऽपि न वैशिष्ट्यमस्ति वो नामधारकाः ।
व्रतिनो ब्राह्मणा जैना ये त एव गुणाधिकाः॥ १८९ ॥
निर्व्रता निर्नमस्कारा निर्घृणाः पशुघातिनः ।
म्लेछाचारपरा यूयं न स्थाने धार्मिका द्विजाः ॥ १९० ।
तस्मादंतेकुरु म्लेछा इव तेऽमी महीभुजां ।
प्रजासामान्यधान्यांशदानाद्यैरविशेषिताः ॥ १९१ ॥
किमत्र बहुनोक्तेन जैनान्मुत्क्वा द्विजोत्तमान् ।
नान्ये मान्या नरेन्द्राणां प्रजासामान्यजीविकाः॥ १९२ ॥
—पर्व ४२ ॥

उपर्युक्त श्लोकोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि, जिन जैनी राजाओंको यह उपदेश दिया गया है उनके ही राज्यमें उस समय ये वेदपाठी ब्राह्मण रहते थे, जो वेद पढ़नेके द्वारा ही अन्य लोगोंसे अपनी जीविका प्राप्त करते थे, और ये लोग ऐसे नहीं थे, जिन्होंने उसी समय कोई नवीन पंथ खड़ा करके अपनेको पुजवाना शुरू कर दिया हो, किन्तु ये लोग अनेक पीढ़ियोंसे माने जा रहे थे। तबही तो इनको अपनी जातिका अभिमान था; और उनका यह अभिमान उस समय ऐसा प्रभाव-शाली हो रहा था कि, जैनराजा भी उनसे कर नहीं लेते थे। तबही तो भरत महाराजको यह जरूरत हुई कि वे जैनीराजाओंको भड़कावें कि इनसे क्यों कर नहीं लिया जाता है और समझावें कि लोग पूज्य नहीं हैं, किन्तु अन्य प्रजाके समान हैं, इस कारण अन्यप्रजाके समान इनसे भी कर लेना चाहिए। इतना ही नहीं, किन्तु इन वेदपाठी ब्राह्मणोंका प्रभाव तो उस समय इतना अधिक था कि, राजाओंको उपदेश देते समय भरतमहाराजको भी यह भय उत्पन्न हुआ और इस अपने भयको उन राजा-ओंके प्रति प्रकट भी कर देना पड़ा कि जब इन ब्राह्मणोंसे अन्य प्रजाके समान कर माँगा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जावेगा तो ये लोग अपने पूज्यपनेके घमंडमें कर देनेसे साफ इनकार कर देंगे और स्पष्ट शब्दोंमें कहेंगे कि, लोगोंको संसारसे पार करनेवाले हम देवब्राह्मण हैं, हमको सब लोग मानते हैं, इस कारण हम राजाको कुछ भी कर नहीं देंगे।

अंधी श्रद्धासे जो चाहे मान लिया जावे; परन्तु विचार करनेपर तो यह कथन किसी तरह भी भरत महाराजके समयके अनुकूल नहीं होता है। क्योंकि आदिपुराणके ही कथनके अनुसार वह कर्मभूमिका प्रारम्भिक काल था; श्रीआदिनाथ भगवान् उस समय तक विद्यमान थे; जिन्होंने क्षत्री, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण बनाकर प्रजाको खेती, आदि काम सिखाये थे; अर्थात् वर्णोंमें विभाजित होने और खेती व्यापार आदि कर्म प्रारम्भ होनेको अभी एक पीढ़ी भी नहीं बीती थी। अभीसे ये ऐसे ब्राह्मण कहाँसे आ सकते थे जिनको अपनी जातिका घमंड हो, प्रजाके लोग भी जिनको संसारसे पार करनेवाले मानते हों और राजा लोग भी जिनको अन्य प्रजासे उच्च समझकर उनसे अन्य प्रजाके समान कर न लेते हों और जिनका इतना भारी प्रभाव फैल रहा हो और इतना जबर्दस्त जोर बँध रहा हो कि, वे अपने पूज्यपनेके घमंडमें राजाको भी कर देनेसे इनकार कर सकें।

भारतवर्ष एक ऐसे समयमेंसे गुजर चुका है, जब ब्राह्मणोंने जैन और बौद्धोंसे यहाँतक घृणा की थी कि उनकी छाया पड़ जाने या कपड़ा भिड़ जानेपर भी वे सचेल स्नान करते थे और ऐसी ऐसी आज्ञायें जारी कर दी गई थीं कि यदि मस्त हाथीसे बचनेके वास्ते जैनमन्दिरके अन्दर घुस जानेके सिवाय अन्य कोई भी उपाय न हो, तो भी जैनमंदिरके अन्दर नहीं जाना चाहिए; अर्थात् जैनमंदिरमें जानेकी अपेक्षा मर जाना अच्छा है। इसही द्वेषके कारण उस समय बौद्ध और जैनियोंका इतना विरोध किया गया था कि उनका जीना भी भारी हो गया था। यहाँ तक कि बौद्ध धर्म तो इस देशसे बिलकुल ही उठ गया और जैनधर्मकी यद्यपि बिलकुल नास्ति नहीं हुई; परन्तु वह भी न होनेके ही बराबर हो गया।

ऐसे प्रबल द्वेषकी अवस्थामें बौद्धोंके समान जैनियोंका भी अस्तित्व न उठ जानेका कारण इसके सिवाय और कुछ नहीं है कि, सारे भारतमें हिंदुओंकी प्रबलता होनेके समयमें भी दक्षिणमें जैनी राजा होते रहे हैं जिनकी बदौलत उस समय जैनियोंको दक्षिणमें पनाह मिलती रही है और यहीं पर कुछ आचार्य उस समयकी परिस्थितिके अनुसार जैनजातिके जीवित रहनेका उपाय बनाते रहे हैं। उनही उपायोंमेंसे एक उपाय जैन ब्राह्मणोंका निर्माण करना भी है जो ऐसे ही किसी समयमें दक्षिण देशमें बनाये गये हैं और अब भी दक्षिण देशमें मौजूद हैं।

आदिपुराणके कर्ता श्रीजिनसेनाचार्यको हुए अनुमान एक हजार वर्ष बीते हैं। वे दक्षिण देशमें हुए हैं और अधिकतर कर्णाटक देशमें ही रहे हैं, जहाँका राजा अमोघवर्ष जैनधर्मका परम श्रद्धालु, सहायक और जिनसेन स्वामीका परम भक्त था।

भरत महाराजका उपर्युक्त उपदेश आदिपुराणके कर्ता आचार्य महाराज और राजा अमोघवर्षके समयसे अक्षर अक्षर मिलता है जब कि ब्राह्मणोंका सारे ही भारतमें पूरा पूरा जोर हो रहा था, वे सर्वथा पूजे जाते थे, न उनसे किसी प्रकारका कर लिया जाता था और न उनको दंड दिया जाता था; सारे भारतमें उनकी ऐसी मान्यता होनेके कारण राजा अमोघवर्षके राज्यमें भी उनका अन्य प्रजासे कुछ अधिक माना जाना और उनसे कर न लिया जाना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है; परन्तु जैनी राजाके राज्यमें भी जैनधर्मके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परम शत्रु इन द्वेषी ब्राह्मणोंकी मान्यताका होना आचार्य महाराजको किसी तरह भी सहन नहीं हो सकता था, अतः उन्होंने जैनी राजाका सहारा पाकर इन ब्राह्मणोंको अक्षरम्लेच्छ और साधारण प्रजासे भी निकृष्ट सिद्ध करके उनकी मान्यताको तोड़नेके वास्ते अन्य प्रजाके समान उन पर भी कर लग जानेकी कोशिश की, और स्वयं अमोघवर्ष राजाको समझानेके स्थानमें भरत महाराजके द्वारा उस समयके राजाओंको ऐसा उपदेश देनेकी कथा इस कारण आदिपुराणमें वर्णन कर दी कि आगे होनेवाले जैनराजाओंपर भी इस कथाका असर पड़ता रहे।

पर्व ४१ में कथन किया गया है कि एक दिन भरत महाराजने कुछ स्वप्न देखे; जिनको उन्होंने अनिष्टकारी समझकर यह विचार किया कि इनका फल पंचम कालमें ही होगा; क्योंकि इस समय तो श्रीआदिनाथ भगवान् स्वयं विद्यमान हैं। उनके होते हुए ऐसा उपद्रव कैसे सम्भव हो सकता है। इस सतयुगके बीत जानेपर जब पंचम कालमें पाप अधिक होगा, तब ही इन स्वप्नोंका फल होगा, चौथे कालके अन्तमें ही ये अनिष्टसूचक स्वप्न अपना फल दिखावेंगे। परन्तु भरत महाराजने विचार किया कि, इन स्वप्नोंका फल श्रीभगवान्से भी पूछ लेना चाहिए, इस कारण वे समवसरणमें गये और वहाँ उन्होंने श्रीमहाराजसे प्रार्थना की कि, मैंने जो द्विजोंकी सृष्टि की है सो यह कार्य अच्छा हुआ या बुरा, और मैंने जो स्वप्न देखे हैं उनका फल क्या है? इस पर श्रीभगवान्ने जो उत्तर दिया है, उसका भावार्थ यह है कि—"तूने जो इन साधुसमान गृहस्थ द्विजोंका पूजन किया है, सो जबतक चौथा काल रहेगा तबतक तो ये अपने योग्य आचरणको पालन करते रहेंगे; परन्तु जब कलियुगसमीप आ जावेगा, तब ये लोग अपनी जातिके अभिमानके कारण अपने सदाचारसे भ्रष्ट होकर इस श्रेष्ठ मोक्षमार्गके विरोधी बन जावेंगे और अपनी जातिके अभिमानसे अपनेको सब लोगोंसे बड़ा समझकर धनकी इच्छासे मिथ्या शास्त्रोंके द्वारा सब लोगोंको मोहित करते रहेंगे, आदर सत्कारके कारण अभिमान बढ़ जानेसे ये लोग मिथ्या घमंडसे उद्धत होकर अपने आप ही मिथ्या शास्त्रोंको बना बना कर लोगोंको ठगा करेंगे, इन लोगोंकी चेतनाशक्ति पापकर्मसे मलिन हो जायगी, अतः ये धर्मके शत्रु हो जायँगे। ये अधर्मी लोग प्राणियोंकी हिंसा करनेमें तत्पर हो जायँगे, मधुमांसखानेको अच्छा समझेंगे और हिंसारूप धर्मकी घोषणा करेंगे। ये दुष्ट आशयवाले लोग अहिंसारूप धर्ममें दोष दिखाकर हिंसामय धर्मको पुष्ट करेंगे, पापके चिह्नस्वरूप जनेऊको धारण करनेवाले और जीवोंके मारनेमें तत्पर ये धूर्त लोग आगामी कालमें इस श्रेष्ठ मार्गके विरोधी हो जायँगे। इस कारण ब्राह्मणवर्णकी स्थापना यद्यपि इस कालमें कुछ दोष उत्पन्न करनेवाली नहीं है, तो भी आगामी कालमें खोटे पाखंडोंकी प्रवृत्ति करनेसे यह दोषकी बीजरूप है। परन्तु आगामी कालके लिए दोषकी बीजरूप होने पर भी अब इसे मिटाना नहीं चाहिए। क्योंकि ऐसा करनेसे धर्मरूप सृष्टिका उल्लंघन हो जायगा।" यथाः—

साधु वत्स कृतं साधु धार्मिकद्विजपूजनं।
किंतु दोषानुषंगोत्र कोऽप्यस्ति स निशम्यतां ॥ ४५ ॥
आयुष्मन् भवता सृष्टाय एते गृहमेधिनः।
ते तावदुचिताचारा यावत्कृतयुगस्थितिः ॥ ४६ ॥
ततः कलियुगेऽभ्यर्णे जातिवादावलेपतः।
भ्रष्टाचाराः प्रपत्स्यंते सन्मार्गप्रत्यनीकतां ॥ ४७ ॥
तेऽमी जातिमदाविष्टा वयं लोकाधिका इति।
पुरा दुरागमैर्लोकं मोहयंति धनाशया ॥ ४८ ॥
सत्कारलाभसंवृद्धगर्वा मिथ्यामदोद्धताः।
जनान् प्रतारयिष्यंति स्वयमुत्पाद्य दुःश्रुतीः ॥ ४९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त इमे कालपर्यंते विक्रियां प्राप्य दुर्दृशः ।
धर्मद्रुहो भविष्यंति पापोपहतचेतनाः ॥ ५० ॥
सत्त्वोपघातनिरता मधुमांसाशनप्रियाः ।
प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं घोषयिष्यंत्यधार्मिकाः ॥ ५१ ॥
अहिंसालक्षणं धर्मं दूषयित्वा दुराशयाः ।
चोदनालक्षणं धर्मं पोषयिष्यंत्यमी बत ॥ ५२ ॥
पापसूत्रधरा धूर्ताः प्राणिमारणतत्पराः ।
वर्त्स्यद्युगे प्रवर्त्स्यंति सन्मार्गपरिपंथिनः ॥ ५३ ॥
द्विजातिसर्जनं तस्मान्नाद्य यद्यपि दोषकृत् ।
स्याद्दोषबीजमायत्यां कुपाखंडप्रवर्तनात् ॥ ५४ ॥
इति कालांतरे दोषबीजमप्येतदंजसा ।
नाधुना परिहर्तव्यं धर्मसृष्ट्यनतिक्रमात् ॥ ५५ ॥

—पर्व ४१।

श्रीभगवान्ने भरत महाराजके स्वप्नोंका फल वर्णन करते हुए भी कहा था कि, आदर सत्कारसे जिसकी पूजा की गई है और जो नैवेद्य खा रहा है ऐसे कुत्तेके देखनेका फल यह है कि (पंचम कालमें) अव्रती द्विज भी गुणी पात्रोंके समान आदर सत्कार पावेंगे। यथाः—

शुनोऽर्चितस्य सत्कारैश्चरुभोजनदर्शनात् ।
गुणवत्पात्रसत्कारमाप्स्यंत्यव्रतिनो द्विजाः ॥ १४ ॥

—पर्व ४१।

भरत महाराजने राजाओंको उपदेश देते हुए जिन वेदपाठी ब्राह्मणोंकी निन्दा की है उनका मिलान पंचम कालके उन ब्राह्मणोंके साथ करनेसे-जिनका वर्णन श्रीभगवान्की उक्त भविष्यद्वाणी और स्वप्नफलमें हुआ है-दोनोंका स्वरूप एक ही हो जाता है; अर्थात् यही मालूम होता है कि भगवान्ने ब्राह्मणोंका जो स्वरूप पंचमकालमें हो जाना वर्णन किया है मानों वे ही ब्राह्मण भरत महाराजका उपदेश होते समय चौथे कालके प्रारम्भमें ही मौजूद थे; या ऐसा मालूम होता है, मानों भरत महाराज ही पंचम कालमें अवतार लेकर इन पंचम कालके ब्राह्मणों पर कर लगानेका उपदेश पंचम कालके जैनी राजाओंको दे रहे हैं। अर्थात् यदि भरत महाराजके स्थानमें जैन राजाओंको उपदेश देनेवाले श्री जिनसेनाचार्य मान लिये जायँ तो सब बात ठीक बैठ जाती है।

भरत महाराजने जो उपदेश अपने दरबारमें आये हुए राजाओंको दिया था, उसके शेष भागको पढ़नेसे मालूम होता है कि, उस समय मिथ्याती ब्राह्मणोंका प्रभाव इससे भी अधिक था, जितना कि ऊपरके कथनसे मालूम हुआ है। यहाँ तक कि जैनी राजा भी उन पर श्रद्धा रखकर उनके दिये हुए 'शेषा' अर्थात् देवता पर चढ़ाई हुई फूलमाला आदिकको या पूजनसे बची हुई सामग्रीको और उनके देवताओंके स्नानके पानीको ग्रहण करते थे और उन ब्राह्मणोंके आगे सिर झुकाते थे। उस समय यह प्रथा ऐसी प्रबल हो रही थी कि इस प्रथाका छुड़ाना भरत महाराजको भी मुश्किल जान पड़ता था। देखिए भरत महाराजने राजाओंको उपदेश देते समय क्या कहा है—

"क्षत्रियोंको बड़ी कोशिशके साथ अपने वंशकी रक्षा करनी चाहिए और वह इस तरह पर हो सकती है कि, उनको अन्य मतवालोंके धर्ममें श्रद्धा रखकर उनके दिये हुए शेषा और स्नानोदक आदि कभी ग्रहण नहीं करने चाहिए। यदि कोई कहे कि उनके शेषाक्षत आदि ग्रहण करनेमें क्या दोष है, तो उसका उत्तर यह है कि इसमें अपने महत्त्वका नाश होता है और अनेक अनिष्ट होते हैं, इस वास्ते उनका त्याग करना ही उचित है। दूसरोंके सामने सिर झुकानेसे अपने महत्त्वका नाश होता है, इसलिए उनकी शेषा आदि लेनेसे अपनी निकृष्टता ही होती है। कदाचित् कोई पाखंडी किसी प्रकारका द्वेष करके राजाके सिरपर 'विष-पुष्प' रख दे, तो इसतरह भी राजाका नाश हो सकता है, या कोई राजाको मोहित करनेके लिए राजाके सिर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर वशीकरण-पुष्प रख दे, तो वह राजा पागल-के समान होकर उसके वशमें हो जायगा। इस लिए राजा लोगोंको अन्यमतवालोंकी शेषा आशीर्वाद, शान्तिवचन, शान्तिमंत्र और पुण्याह-वाचन आदि सबका त्याग कर देना चाहिए। यदि वह त्याग नहीं करेगा तो नीच कुलवाला हो जायगा। जैनी राजा अरहंत देवके चरणोंकी सेवा करनेवाले होते हैं, इस वास्ते उनको अरहंत देवकी ही शेषा आदि ग्रहण करनी चाहिए, जिससे उनके पापोंका नाश हो। जो लोग जैनी नहीं हैं, उनको कोई अधिकार नहीं है कि वे क्षत्रियोंको शेषा देवें। इस वास्ते राजा लोगोंको अपने कुलकी रक्षा करनेके लिए सदा कोशिश करते रहना चाहिए। यदि वे ऐसा न करेंगे तो अन्यमती लोग झूठे पुराणोंका उपदेश सुनाकर उनको ठग लेंगे ॥" मूल श्लोक ये हैं:-

तैस्तु सर्वप्रयत्नेन कार्यं स्वान्वयरक्षणं ।
तत्पालनं कथं कार्यमिति चेत्तदनूच्यते ॥ १७ ॥
स्वयं महान्वयत्वेन महिम्नि क्षत्रियाः स्थिताः ।
धर्मास्थया न शेषादिग्राह्यं तैः परलिंगिनां ॥ १८ ॥
तच्छेषादिग्रहे दोष कश्चेन्माहात्म्यविच्युतिः ।
अपाया बहवश्चास्मिन्नतस्तत्परिवर्जनं ॥ १९ ॥
माहात्म्यप्रच्युतिस्तावत्कृत्वान्यऽस्य शिरोनतिं ।
ततः शेषादुपादाने स्यान्निकृष्टत्वमात्मनः ॥ २० ॥
प्रद्विषन्परपाखंडी विषपुष्पाणि निक्षिपेत् ।
यथस्य मूर्ध्नि नन्वेवं स्यादपायो महीपतेः ॥ २१ ॥
वशीकरणपुष्पाणि निक्षिपेयदि मोहने ।
ततोऽयं मूढवद्वृत्तिरुपेयादन्यवश्यतां ॥ २२ ॥
तच्छेषाशीर्वचः शांतिवचनाद्यन्यलिंगिनां ।
पार्थिवैः परिहर्तव्यं भवेन्यक्कुलतान्यथा ॥ २३ ॥
जैनास्तु पार्थिवास्तेषामर्हत्पादोपसेविनां ।
तच्छेषानुमतिर्न्याय्या ततः पापक्षयो भवेत् ॥ २४ ॥
ततः स्थितमिदं जैनान्मतादन्यमतस्थिताः ।
क्षत्रियाणां न शेषादिप्रदानेरधिकृता इति ॥ २९ ॥
कुलानुपालने यत्नमतः कुर्वंतु पार्थिवः ।
अन्यथारन्यैः प्रतार्येरन्पुराणाभासदेशनात् ॥ ३० ॥
—पर्व ४२ ।

इन श्लोकोंसे प्रकट है कि जैनी राजाओंको अन्य मतियोंके देवताका प्रसाद आदि लेनेसे रोकनेके लिए भरत महाराजने केवल धर्म उपदेश देना ही काफी नहीं समझा है, किन्तु उन्हें बड़े बड़े भय दिखलानेकी भी जरूरत मालूम हुई है; जिससे स्पष्ट सिद्ध है कि उस समय अन्यमतियोंका बहुत ही ज्यादा प्रभाव और प्रचार था; परन्तु जिस समयका यह वर्णन है वह कर्मभूमिका प्रारम्भिक काल था जब कि श्रीआदिनाथ भगवान्ने सब लोगोंको खेती व्यापार आदि छह कर्म सिखाये थे और नगर ग्राम आदि बनाकर उन ही लोगोंमेंसे योग्य पुरुषोंको भिन्न भिन्न देशोंके राजा नियत किये थे, और फिर केवलज्ञान प्राप्त करके वे अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा जगत्भरमें सत्य धर्मका प्रकाश कर रहे थे और उनके बेटे भरत महाराज छः खंड पृथिवीको जीतकर ३२ हजार मुकुटबद्ध राजाओं पर राज्य कर रहे थे। इस कारण भरत महाराजका उपर्युक्त उपदेश उस समयके अनुकूल किसी तरह भी नहीं हो सकता है। हाँ, श्रीजिनसेनाचार्यके समय से यह कथन अक्षर अक्षर मिल जाता है, जब कि सारे ही भारतमें ब्राह्मणोंका जोर हो रहा था और जब कि सारे भारतमें अमोघवर्ष जैसे एक ही दो जैनी राजा दिखाई देते थे और बाकी सब ही राजा ब्राह्मणोंके अनुयायी थे। ऐसे समयमें अमोघवर्ष आदि राजाओंका भी इन ब्राह्मणोंके हाथसे उनके देवताका प्रसाद लेना, उनको प्रणाम करना, उनका आशीर्वाद आदि स्वीकार करना और देशभरमें इन ब्राह्मणोंकी प्रतिष्ठा होनेके कारण इस प्रथाका त्याग कठिनतर होना बहुत ही सम्भव मालूम होता है। इससे यही सिद्ध होता है कि यह सब उपदेश भरत महाराजने अपने समयके राजाओंको नहीं दिया; किन्तु जिनसेन महाराजने ही यह उपदेश अमोघ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष आदि जैन राजाओंको आदिपुराणमें उक्त प्रसंगकी अवतारणा करके दे डाला है।

आदिपुराणके विषयमें यह अनोखा विचार—कि इसमें श्री आदिनाथस्वामीके समयका कथन नहीं है; किन्तु उस समयके पुरुषोंके नामसे ग्रन्थकर्ताके ही समयका कथन है—केवल उपर्युक्त उपदेशसे ही सिद्ध नहीं होता है; किन्तु भरतमहाराजके द्वारा ब्राह्मण वर्णकी स्थापनाका कथन पढ़नेसे भी यही फल निकलता है। क्योंकि भरत महाराजने ब्राह्मण वर्णकी स्थापना करते समय अपने बनाये हुए ब्राह्मणोंको जो उपदेश दिया था, उसमें सद्गृहस्थपनेकी क्रियाका उपदेश देते हुए कहा था कि सत्य, शौच, क्षम, दम आदि उत्तम आचरणोंको धारण करनेवाले सद्गृहस्थको चाहिए कि वह अपनेको देवब्राह्मण माने। यथाः—

धर्म्यैराचरितैः सत्यशौचशांतिदमादिभिः।
देवब्राह्मणतां श्लाघ्यां स्वस्मिन्संभावयत्यसौ ॥ १०७ ॥
—पर्व ३९।

भरत महाराज यह कह तो गये कि ऐसा ऐसा करनेसे वह जैनी अपनेको देवब्राह्मण माने; परन्तु उसही समय उनको इस बातका भय भी उत्पन्न हो गया कि ब्राह्मण जातिके लोग अर्थात् ये लोग जो अनेक पीढ़ियोंसे ब्राह्मण माने जा रहे हैं और सब लोग जिनका आदर-सत्कार करते हैं, इन हमारे नवीन बनाये हुए देवब्राह्मणों पर क्रोध करके नानाप्रकारके आक्षेप करेंगे, इस कारण उन्होंने अपने बनाये हुए ब्राह्मणोंको इसके आगे निम्न लिखित शिक्षा दी। देखिएः—

" यदि अपनेको झूठमूठ द्विज माननेवाला कोई पुरुष अपनी जातिके अहंकारमें इस नवीन देवब्राह्मणको कहने लगे कि 'क्या तू आज ही देव बन गया है, क्या तू अमुक आदमीका बेटा नहीं है, और क्या तेरी माता अमुककी बेटी नहीं है, तब फिर तू आज किस कारणसे ऊँची नाक करके मेरे जैसे द्विजोंका आदरसत्कार किये बिना ही जा रहा है? तेरी जाति वही है, जो पहले थी; तेरा कुल वही है, जो पहले था; और तू भी वही है, जो पहले था; तो भी तू आज अपनेको देवस्वरूप मानता है। देवता, अतिथि, पितृ और अग्निसम्बन्धी कार्य करनेमें तत्पर होकर भी तू गुरु—द्विज—देवोंको प्रणाम करनेसे विमुख है। जिनेंद्रदेवकी दीक्षा धारण करनेसे अर्थात् जैनी बननेसे तुझको ऐसा कौनसा अतिशय प्राप्त हो गया है? तू अब भी मनुष्य है और पृथिवीको पैरोंसे स्पर्श करता हुआ ही चलता है।' इस प्रकार अत्यन्त क्रोध करता हुआ यदि कोई द्विज उलाहना दे तो उसको इस प्रकार युक्तिसे भरा हुआ उत्तर देना चाहिए।" मूल श्लोक ये हैं:—

अथ जातिमदावेशात्कश्चिदेनं द्विजब्रुवः।
ब्रूयादेवं किमद्यैव देवभूयं गतो भवान् ॥ १०८ ॥
त्वमामुष्यायणः किंन्न किं तेऽम्बाऽमुष्यपुत्रिका।
येनैवमुन्नसो भूत्वा यास्यसत्कृत्यमद्विधान् ॥ १०९ ॥
जातिः सैव कुलं तच्च सोऽसि योऽसि प्रमेतनः।
तथापि देवतात्मानमात्मानं मन्यते भवान् ॥ ११० ॥
देवताऽतिथिपित्रग्निकार्येष्वप्राकृतो भवान्।
गुरुद्विजातिदेवानां प्रणामाच्च पराङ्मुखः ॥ १११ ॥
दीक्षां जैनीं प्रपन्नस्य जातः कोऽतिशयस्तव।
यतोऽद्यापि मनुष्यस्त्वं पादचारी महीं स्पृशन् ॥ ११२
इत्युपारूढसंरंभमुपालब्धः स केनचित्।
ददात्युत्तरमित्यस्मै वचोभिर्युक्तिपेशलैः ॥ ११३ ॥
—पर्व ३९।

उपर्युक्त श्लोकोंके पढ़नेसे साफ मालूम होता है कि, जिन द्विजोंके क्रोध करनेका भय भरत महाराजको हुआ उनको इस बातका भारी घमंड था कि हम जातिके द्विज हैं, अर्थात् हम परम्परासे द्विजोंकी संतानमें चले आते हैं और जैनी नवीन द्विज बनते हैं, और यह कि वे लोग यह भी श्रद्धा रखते थे कि कोई मनुष्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने गुणोंसे द्विज नहीं हो सकता है; किन्तु जो परम्परासे द्विजोंकी संतानमें चला आता हो वह ही द्विज है। तबही तो भरत महाराजको यह खयाल हुआ कि वे मेरे बनाये हुए देव ब्राह्मणों-पर यह आक्षेप करेंगे कि अनेक गुण प्राप्त करने और अनेक उत्तम क्रियाओंके करने पर भी तू द्विज नहीं हो सकता है; क्योंकि तू अमुक माता पिताका बेटा है, अर्थात् द्विजकी सन्तान न होनेसे तू किसी प्रकार भी द्विज नहीं माना जा सकता। इन श्लोकोंसे यह भी स्पष्ट सिद्ध है कि, जिस समयका यह कथन है, उस समय जातिका अभिमान करनेवाले इन मिथ्यात्वी द्विजोंका इतना भारी प्रभाव था कि, यदि कोई इनको प्रणाम न करता था तो उसपर ये लोग क्रोध करके अनेक प्रकारके आक्षेप करते थे; अर्थात् सबसे प्रणाम करानेको वे अपना ऐसा जबर्दस्त अधिकार समझते थे जिसको कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता था, यहाँतक कि उनके खयालमें ऊँचे दर्जेकी क्रिया करनेवाला जैनी भी उनको प्रणाम करनेसे इंकार नहीं कर सकता था।

परन्तु क्या यह दशा भरत महाराजके समयमें सम्भव हो सकती है? क्या कोई इस बात पर विश्वास कर सकता है कि, भरत महाराजके ब्राह्मण बनानेसे पहले ही या ब्राह्मणवर्ण स्थापन करनेके दिन ही ऐसी ब्राह्मण जाति मौजूद थी जिसको अपनी जातिका घमंड हो और जिसका ऐसा भारी प्रभाव हो जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है। आदिपुराणके अन्य कथनोंसे तो यही सिद्ध होता है कि, उस समय ऐसे ब्राह्मणोंका विद्यमान होना तो दूर रहा, किन्तु उस समय उनका स्वप्नमें भी खयाल नहीं हो सकता था। क्योंकि भरत महाराजको तो पंचम कालमें होनेवाले ऐसे ब्राह्मणोंका स्वप्न भी इस कथनके बहुत वर्ष पीछे आया था और श्री भगवान्ने पंचम कालमें हो जानेवाले ऐसे ब्राह्मणोंका जो वर्णन अपनी भविष्यद्वाणीमें किया था वह भी भरत महाराजके ब्राह्मण बनानेसे बहुत समय पीछे किया था; अर्थात् अभी तो भरत महाराज-को ऐसे ब्राह्मणोंका स्वप्न भी नहीं आया था। इस वास्ते इस बातको तो अन्धी श्रद्धावाले भी माननेको तैयार नही हो सकते हैं कि भरत-महाराजके द्वारा ब्राह्मणवर्णकी स्थापना होते समय ब्राह्मण विद्यमान थे और ऐसे ब्राह्मण विद्यमान थे, जिनका कथन उक्त श्लोकोंके द्वारा भरत महाराज अपने बनाये हुए ब्राह्मणोंसे कर रहे हैं। हाँ, आदिपुराणके कर्ता आचार्य जिनसेन महा-राजके समयकी अवस्था बिलकुल इस कथनके अनुकूल पड़ती है; क्योंकि उस समय ब्राह्मणोंका ऐसा ही प्राबल्य था।

मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंके द्वारा किये गये आक्षे-पोंका वर्णन करके भरत महाराजने उसका जो कुछ उत्तर अपने बनाये हुए ब्राह्मणोंको सिखाया है, उससे भी इसही बातकी पुष्टि होती है कि, यह कथन भरत महाराजके समयका नहीं हो सकता है। क्यों कि इस उत्तरमें उन्होंने इस बातके सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि, मनुष्यकी उच्चता जन्मसे नहीं है, किन्तु कर्मसे है। अर्थात् उच्च कुल और उच्च जातिमें जन्म लेनेसे मनुष्य बड़ा नहीं होता है, किन्तु दर्शन-ज्ञानचारित्रकी प्राप्तिसे ही वह उच्च होता है। अभिप्राय इसका यह है कि हे जातिका अभिमान करनेवाले ब्राह्मणो, यद्यपि तुम जातिमें ऊँचे हो; परन्तु हम सम्यक्दर्शन-ज्ञानचारित्रकी प्राप्तिसे ऊँचे हो गये हैं, इस वास्ते वास्तवमें हम ही ऊँचे हैं। उस उत्तरका अनुवाद यह है:—

"हे अपनेको द्विज माननेवाले, तू आज मेरा देवपनेका जन्म सुन—श्रीजिनेन्द्रदेव ही मेरे पिता हैं, और ज्ञान ही मेरा निर्मल गर्भ है। उस गर्भमें अर्हंतदेवसम्बंधी तीन भिन्न भिन्न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शक्तियोंको प्राप्त करके मैं संस्काररूपी जन्मसे प्राप्त हुआ हूँ। मैं बिना योनिके पैदा हुआ हूँ, इस कारण देव हूँ; मनुष्य नहीं हूँ। मेरे समान जो कोई भी हों उन सबको तू देव-ब्राह्मण ही कह। मैं श्रीस्वयम्भू भगवान्के मुखसे उत्पन्न हुआ हूँ, इस वास्ते देवद्विज हूँ, मेरे व्रतोंका शास्त्रोक्त चिह्न यह मेरा पवित्र जनेऊ है। आप लोग द्विज नहीं हैं, किन्तु गलेमें तागा डालकर श्रेष्ठ मोक्षमार्गमें तीक्ष्ण काँटे बनते हुए पापरूप शास्त्रोंके अनुसार चलनेवाले केवल मलसे ही दूषित हैं। जीवोंका जन्म दो प्रकारका है, एक शरीर जन्म और दूसरा संस्कारजन्म। इस ही प्रकार जैनशास्त्रोंमें मरण भी दो प्रकारका कहा है, पहले शरीरके नष्ट होने पर दूसरे भवमें दूसरे शरीरके प्राप्त होनेको जीवोंका शरीरजन्म समझना चाहिए। इसही प्रकार जिसे अपने आत्माकी प्राप्ति नहीं हुई है, उसको संस्कारोंके निमित्तसे दूसरे जन्मकी प्राप्ति-का होना संस्कारजन्म है। इसी प्रकार आयु पूर्ण होनेपर शरीर छोड़ना शरीरमरण है और व्रतोंको धारण करके पापोंको छोड़ना संस्कारमरण है। जिसको ये संस्कार प्राप्त हुए हैं, उसका मिथ्यादर्शनरूप पहली पर्यायसे मरण ही हो जाता है। इन दोनों जन्मोंमेंसे यह संस्कारजन्म जो पापसे दूषित नहीं है गुरुकी आज्ञानुसार मुझको प्राप्त हुआ है, इस वास्ते मैं देवद्विज हूँ।" मूल श्लोक ये हैं:—

श्रूयतां भो द्विजंमन्य त्वयाऽस्मद्दिव्यसंभवः।
जिनो जनयिताऽस्माकं ज्ञानं गर्भोऽतिनिर्मलः ॥११४॥
तत्राईतीं त्रिधा भिन्नां शक्तिं त्रैगुण्यसंश्रितां।
स्वसात्कृत्य समुद्भूता वयं संस्कारजन्मना ॥ ११५ ॥
अयोनिसंभवास्तेन देवा एव न मानुषाः।
वयं वयमिवान्येऽपि संति चेद्ब्रूहि तद्विधान् ॥११६॥
स्वायंभुवान्मुखाज्जाातास्ततो देवद्विजा वयं।
व्रतचिह्नं च नः सूत्रं पवित्रं सूत्रदर्शितं ॥ ११७ ॥
पापसूत्रानुगा यूयं न द्विजा सूत्रकंटकाः।
सन्मार्गकंटकास्तीक्ष्णाः केवलं मलदूषिताः ॥ ११८ ॥
शरीरजन्म संस्कारजन्म चेति द्विधा मतं।
जन्मांगिनां मृतिश्चैवं द्विधाम्नाता जिनागमे ॥ ११९ ॥
देहांतरपरिप्राप्तिः पूर्वदेहपरिक्षयात्।
शरीरजन्म विज्ञेयं देहभाजां भवांतरे ॥ १२० ॥
तथा लब्धात्मलाभस्य पुनः संस्कारयोगतः।
द्विजन्मतापरिप्राप्तिर्जन्मसंस्कारजं स्मृतं ॥ १२१ ॥
शरीरमरणं स्वायुरंते देहविसर्जनं।
संस्कारमरणं प्राप्तव्रतत्यागःसमुज्झनं ॥ १२२ ॥
यतोऽयं लब्धसंस्कारो विजहाति प्रगेतनं।
मिथ्यादर्शनपर्यायं ततस्तेन मृतो भवेत् ॥ १२३ ॥
तत्रसंस्कारजन्मेदमपापोपहृतं परं।
जातं नो गुर्वनुज्ञानादतो देवद्विजा वयं ॥ १२४ ॥
—पर्व ३९।

इन श्लोकोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि भरतमहाराज-के ब्राह्मणवर्ण स्थापन करते समय जो मिथ्यात्वी ब्राह्मण मौजूद थे, वे जनेऊ पहनते थे और अप-नेको ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न हुआ मानते थे। उनहीके मुकाबिलेमें भरतमहाराजने अपने बनाये हुए ब्राह्मणोंको यह उत्तर सिखाया कि, तुम भी यह कहो कि, हमने जिनेंद्र भगवान्के मुखसे निकली हुई जिनवाणीको ग्रहण किया है, इस वास्ते हम भी श्रीस्वयम्भू भगवान्के मुखसे ही उत्पन्न हुए हैं और जिसप्रकार तुम जनेऊ पहने हुए हो उसी प्रकार हम भी पहने हुए हैं, और तुमको जो अपनी जातिका घमंड है वह मिथ्या है। क्योंकि तुम अपनेको परम्परासे ब्राह्मणकी संतान सिद्ध करके शरीरजन्मका घमंड करते हो। शरीर अनेक दोषोंसे दूषित होता है, इस वास्ते शरीरका अर्थात् जातिका घमंड नहीं करना चाहिए। रत्नत्रयके ग्रहणका और व्रतोंके पालनेका जन्म—जिसको संस्कार-जन्म कहते हैं—हमने प्राप्त कर लिया है, इस कारण हमारे माता पिता कोई भी हों, किन्तु हम देवद्विज हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त सारा कथन भरतमहाराजके समयसे तो मिलान नहीं खाता है, किन्तु पंचम काल और श्रीजिनसेनाचार्यके समयके बिलकुल अनुकूल है; जब कि जैनके विरोधी ब्राह्मणोंका बड़ाभारी जोर था और जब कि वे जैनियोंके साथ हदसे ज्यादा द्वेष करते थे। मालूम होता है कि, इसही द्वेषकी अग्निसे भड़ककर और अमोघवर्ष जैसे जैनराजाका आश्रय पाकर ही आचार्य महाराजने इस ब्राह्मणोंकी निन्दा की है और राजाओंको भी इनके विरुद्ध भड़कानेकी कोशिश की है; परन्तु ऐसी कोशिश करते हुए भी आचार्य महाराजके हृदयमें इन मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंकी परम्परागत जातिका प्रभाव और जैन ब्राह्मणोंकी नवीन उत्पत्तिका खयाल बराबर बना रहा है। देखिए भरतमहाराज अपने बनाये हुए ब्राह्मणोंको पूर्वोक्त उत्तर सिखानेके पश्चात् क्या समझाते हैं:—

"सच्ची क्रिया करनेवाले ब्राह्मणोंके हृदयसे जातिवादका खयाल दूर करनेके लिए—अर्थात् जैन ब्राह्मणोंके हृदयसे इस बातका संकोच हटानेके लिए कि हम नवीन ब्राह्मण बनते हैं और मिथ्यात्वी ब्राह्मण परम्परासे ब्राह्मण संतानमें उत्पन्न होते हुए चले आते हैं, इस कारण जातिके ब्राह्मण हैं—मैं तुमको मैं फिर समझाता हूँ कि, जो ब्रह्माकी सन्तान हो उसे ब्राह्मण कहते हैं और स्वयम्भू भगवान् जिनेंद्रदेव ब्रह्मा हैं। आत्माके सम्यग्दर्शन आदि गुणोंके बढ़ानेवाले होनेके कारण वे जिनेंद्रदेव आदि परम ब्रह्मा हैं और मुनीश्वर लोग यह मानते हैं कि परम ब्रह्म या केवल ज्ञान उनहीके आधीन है। हरिणका चमड़ा रखनेवाला जटा दाढ़ी आदि जिसके चिह्न हैं, जिसने कामके वश होकर गधेका मुँह बनाया और ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट हुआ, वह ब्रह्मा नहीं हो सकता है। इस वास्ते जिन्होंने दिव्य मूर्तिवाले जिनेंन्द्रदेवके निर्मल ज्ञानरूपी गर्भसे जन्म लिया है वे ही द्विज हैं। व्रत, मंत्र आदि संस्कारोंसें जिन्होंने गौरव प्राप्त कर लिया है, वे उत्तम द्विज-वर्णान्तःपाती नहीं हो सकते हैं, अर्थात् किसी प्रकार वर्णसे गिरे हुए नहीं माने जा सकते हैं, किन्तु जो क्षमा शौच आदि गुणोंके धारी हैं, संतोषी हैं, उत्तम और निर्दोष आचरण-रूपी आभूषणोंसे भूषित हैं, वे ही सब वर्णोंमें उत्तम हैं और जो निंद्य आचरण करनेवाले हैं, पापरूप आरम्भमें सदा लगे रहते हैं और सदा पशुओंका घात किया करते हैं वे किसी तरह भी द्विज नहीं माने जा सकते हैं। हिंसामय धर्मको मानकर जो पशुओंका घात करते हैं और पाप शास्त्रोंसे आजीविका करते हैं, नहीं मालूम उनकी क्या दुर्गति होगी। जो अधर्मस्वरूप धर्मको मानते हैं मैं उनके सिवाय और किसीको कर्म-चांडाल नहीं समझता हूँ। जो निर्दय होकर पशुओंको मारते हैं वे पापरूप कार्योंके पण्डित हैं, लुटेरे हैं, धर्मात्मा लोगोंसे अलग हैं और राजा लोगोंके द्वारा दंड देनेके योग्य हैं। पशुओंकी हिंसा करनेके कारण जो राक्षसोंसे भी अधिक निर्दय हैं, यदि ऐसे लोग ही ऊँचे माने जावेंगे तो दुःखके साथ कहना पड़ता है कि, बेचारे धार्मिक लोग व्यर्थ ही मारे गये। अपनेको द्विज कहलानेवाले ये लोग पापाचरण करते हैं, इस वास्ते बुद्धिमान् लोग इनको कृष्ण वर्गमें गिनते हैं, अर्थात् इनको भील म्लेच्छ समझते हैं और जैनियोंका आचरण निर्मल है, इसवास्ते इनको शुक्ल वर्गमें शामिल करते हैं, अर्थात् इनको आर्य मानते हैं। द्विजोंकी शुद्धि श्रुति, स्मृति, पुराण, चारित्र, मंत्र और क्रियाओंसे और देवताओंका चिह्न धारण करने और कामका नाश करनेसे होती है। जो अत्यंत विशुद्ध वृत्तिको धारण करते हैं, उनको शुक्लवर्गी मानना चाहिए और बाकी सबको शुद्धतासे बाह्य समझना चाहिए। उनकी शुद्धि और अशुद्धि न्याय-अन्यायरूप प्रवृत्तिसे जाननी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दयासे कोमल परिणामोंका होना न्याय है और जीवोंका मारना अन्याय है। इस कारण यह सिद्ध हो गया कि, सब जीवों पर दया करनेसे विशुद्ध वृत्तिको धारण करनेवाले जैनी लोग ही सब वर्णोंमें उत्तम हैं, और द्विज हैं। वे वर्णान्तपाती अर्थात् वर्णमें गिरे हुए नहीं हैं।" मूल श्लोक ये हैं:—

भूयोऽपि संप्रवक्ष्यामि ब्राह्मणान् सत्क्रियोचितान् ।
जातिवादावलेपस्य निरासार्थमतःपरं ॥ १२७ ॥

ब्रह्मणोऽपत्यमित्येवं ब्राह्मणाः समुदाहृताः ।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान्परमेष्ठी जिनोत्तमः ॥ १२७ ॥

स ह्यादि परम ब्रह्मा जिनेंद्रो गुणबृंहणात् ।
परं ब्रह्म यदायत्तमामनंति मुनीश्वराः ॥ १२८ ॥

नैणाजिनधरो ब्रह्मा जटाकूर्चादिलक्षणः ।
यः कामगर्दभो भूत्वा प्रच्युतो ब्रह्मवर्चसात् ॥ १२९ ॥

दिव्यमूर्तेर्जिनेंद्रस्य ज्ञानगर्भादनाविलात् ।
समासादितजन्मानो द्विजन्मानस्ततो मताः ॥ १३० ॥

वर्णांतःपातिनो नैते मंतव्या द्विजसत्तमाः ।
व्रतमंत्रादिसंस्कारसमारोपितगौरवाः ॥ १३१ ॥

वर्णोत्तमानिमान् विद्मः शांतिशौचपरायणान् ।
संतुष्टान् प्राप्तवैशिष्ट्यानक्लिष्टाचारभूषणान् ॥ १३२ ॥

क्लिष्टाचाराः परे नैव ब्राह्मणा द्विजमानिनः ।
पापारंभरताः शश्वदाहत्य पशुघातिनः ॥ १३३ ॥

सर्वमेधमयं धर्ममभ्युपेत्य पशुघ्नतां ।
का नाम गतिरेषां स्यात्पापशास्त्रोपजीविनां ॥ १३४ ॥

चोदनालक्षणं धर्ममधर्मं प्रतिजानते ।
ये तेभ्यः कर्मचांडालान् पश्यामो नापरान् भुवि ॥ १३५ ॥

पार्थिवैर्दण्डनीयाश्च लुंटका पापपंडिताः ।
तेऽमी धर्मजुषां बाह्या ये निघ्नंत्यघृणाः पशून् ॥ १३६ ॥

पशुहत्यासमारंभात्क्रव्यादेभ्योऽपि निष्कृपाः ।
यद्युच्छ्रुतिमुशंत्येते हंतैवं धार्मिका हताः ॥ १३७ ॥

मलिनाचरिता ह्येते कृष्णवर्गे द्विजब्रुवाः ।
जैनास्तु निर्मलाचाराः शुक्लवर्गे मता बुधैः ॥ १३८ ॥

श्रुतिस्मृतिपुरावृत्तवृत्तमंत्रक्रियाश्रिता ।
देवतालिंगकामांतकृता शुद्धिर्द्विजन्मनाम् ॥ १३९ ॥

ये विशुद्धतरां वृत्तिं तत्कृतां समुपाश्रिताः ।
ते शुक्लवर्गे बोद्धव्याः शेषां शुद्धेः बहिःकृताः ॥ १४० ॥

तच्छुध्यशुद्धी बोद्धव्ये न्यायान्यायप्रवृत्तितः ।
न्यायोदयार्द्रवृत्तित्वमन्यायः प्राणिमारणं ॥ १४१ ॥

विशुद्धवृत्तयस्तस्माज्जैना वर्णोत्तमा द्विजाः ।
वर्णांतःपातिनो नैते जगन्मान्या इति स्थितं ॥ १४२ ॥

—पर्व ३९ ।

उपर्युक्त श्लोकोंसे सिद्ध है कि भरतमहाराजके ब्राह्मण बनानेसे पहलेसे ब्राह्मण मौजूद थे और वे अपनेको ब्रह्माकी सन्तान बतलाते थे जैसा कि इस पंचम कालके ब्राह्मण बतलाते हैं और वे लोग ब्रह्माकी कथाको उस ही प्रकार मानते थे जिस प्रकार आज कल मानते हैं। तब ही तो भरत महाराजने अपने बनाये हुए ब्राह्मणोंका समझाया कि ब्रह्मा वह नहीं है जिसको ये मिथ्यात्वी ब्राह्मण मानते हैं; किन्तु श्रीजिनेंद्र देव ही ब्रह्मा हैं। भरतमहाराजको ब्राह्मणोंकी इस प्रसिद्धिको भी मानना पड़ा कि जो ब्रह्माकी संतान हो वह ही ब्राह्मण है। इसकी पूर्ति उन्होंने इस तरह पर कर दी कि जो श्रीजिनेंद्रदेवकी वाणीको मानता है वह ही जिनेंद्रदेव अर्थात् ब्रह्माकी संतान है और वह ही ब्राह्मण है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उस समय भरतमहाराजके हृदय पर उन मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंके प्रभावका इतना भारी असर पड़ा कि वे यह भी भूल गये कि हमने तो ब्राह्मणोंका एक पृथक् ही वर्ण स्थापित किया है; किन्तु उनको इन मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंके मुकाबलेमें यही सिद्ध करते बन पड़ा कि सभी जैनी लोग ब्राह्मण हैं, क्योंकि सभी जैनी जिनेंद्र देवकी वाणीको मानते हैं। जो जिनेंद्रदेवकी वाणीको मानता है, वह ब्रह्माकी सन्तान है और जो ब्रह्माकी सन्तान है वह ब्राह्मण है, अर्थात् सब ही जैनी लोग ब्राह्मण हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने बनाये हुए नवीन ब्राह्मणोंको पुराने ब्राह्मणोंके आक्षेपोंसे बचाने और पुराने ब्राह्मणोंकी जातिके घमंडको तोड़नेके लिए भरत-महाराजको यह भी सिद्ध करना पड़ा कि वर्ण या जाति जन्मसे नहीं है, किन्तु कर्मसे है। अर्थात् किसीको उच्च या नीच माननेके वास्ते यह नहीं देखना चाहिए कि उसके बाप दादा पड़दादा आदि कौन थे, किन्तु यह देखना चाहिए कि वह स्वयं कैसे कर्म करता है। यदि वह उत्तम कर्म करता है तो उत्तम है और नीच कर्म करता है तो नीच है। तब ही तो भरत महाराजने कहा है कि मनुष्य-की शुद्धि अशुद्धि हिंसा और अहिंसासे माननी चाहिए, अर्थात् जो हिंसा करता है उसका कुल और जाति कैसी ही उच्च हो; परन्तु वह नीच ही है और जो दया करता है उसका कुल और जाति कुछ ही हो, परन्तु वह उच्च ही है। इस ही सिद्धान्तसे भरत महाराजने यह नतीजा निकाल दिया कि जो कोई भी मनुष्य जैनधर्मको धारण करके दया धर्मका पालन करता है वह ही उत्तम है और ये प्राचीन ब्राह्मण पशुघात करनेसे नीच हैं।

इन श्लोकोंसे यह भी मालूम होता है कि, भरत महाराजको इन पशुघाती ब्राह्मणोंकी मान्यता होनेका बड़ा भारी दुःख था और इन ब्राह्मणोंकी इस पापरूप प्रवृत्तिका दूर होना वे बहुत ही कठिन समझते थे; तबही तो उन्होंने अपने इस दुःखको वर्णन करते हुए अपने चित्तकी अति प्रबल कषायको यह कहकर शांत किया है कि इन लोगोंको राजाओंके द्वारा दंड मिलना चाहिए।

परन्तु आदिपुराणके ही दूसरे कथनोंके अनुसार भरत महाराजके समयमें और विशेष-कर उनके द्वारा ब्राह्मण वर्णकी स्थापना होनेके दिनोंमें मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंका विद्यमान होना, उनका इतना भारी प्रभाव होना, और उनमें अपनी जातिका इतना भारी घमंड होना, किसी तरह भी सम्भव नहीं हो सकता है और न ये बातें जो उक्त श्लोकोंमें कहलाई गई हैं, किसी तरह ३२ हजार राजाओंके अधिपति भरत चक्रवर्तीके द्वारा कही जानेके योग्य जान पड़ती हैं।

उपर्युक्त श्लोकोंमें बार बार यह भी कहा गया है कि जैनी 'वर्णान्तः पाती' अर्थात् वर्णोंसे गिरे हुए नहीं हैं; जिससे सिद्ध है कि जिस समयका यह कथन है उस समय जैनी लोग सर्वसाधारणमें ऐसे ही माने जाते थे, अर्थात् उस समय अन्य मतका बड़ा भारी प्राबल्य था और जैनी लोग घृणाकी दृष्टिसे देखे जाते थे, परन्तु यह अवस्था किसी तरह भी भरत महाराजके समयकी नहीं हो सकती है; किन्तु यह सारा कथन आचार्य महाराजके ही समयके अनुकूल पड़ता है।

कुछ भी हो, अर्थात् चाहे यह कथन भरत महाराजके समयका हो और चाहे आचार्य महाराजके समयका; किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि आदिपुराणके कर्ताने इन मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंका कथन करके भरत महाराजके द्वारा ब्राह्मण वर्ण स्थापन होनेकी बातको असत्य सिद्ध कर दिया और स्वयं ही यह स्वीकार कर लिया कि, भरत महाराजके ब्राह्मण बनानेके दिन भी ब्राह्मण मौजूद थे और ऐसे ब्राह्मण-मौजूद थे, जिनको अपनी जातिका घमंड था और जिनके विषयमें भरत महाराजको ब्राह्मण वर्ण स्थापन करनेके दिन ही यह भय हो गया था कि वे हमारे बनाये हुए ब्राह्मणों पर क्रोध करेंगे। (अपूर्ण।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परामर्श ।

[ले०-श्रीयुत पं० रामचरित उपाध्याय]

देश-प्रेम ही सिद्ध मन्त्र है, और सुखोंका मूल सपूतो ।
भारतके आगे त्रिभुवनको, समझो पगकी धूल सपूतो ॥ १ ॥
भिक्षुक बननेसे भिक्षा भी मिल सकती है नहीं सपूतो ।
निर्जल भूतल पर क्या नलिनी, खिल सकती है कहीं सपूतो ॥ २ ॥
दुखड़ा रोनेसे क्या कोई पाता है सुख-भोग सपूतो ।
निज उन्नतिके लिए निरन्तर, करो उचित उद्योग सपूतो ॥ ३ ॥
साहस-धैर्य-प्रताप-पराक्रम-बुद्धि-एकता-पूर्ण सपूतो-
जब होजाओगे, तब जगमें सभ्य बनोगे तूर्ण सपूतो ॥ ४ ॥
कर्मवीर बनना है यदि तो छोड़ो विषय-विलास सपूतो ।
पहले अपनी चाल सुधारो, क्यों सहते उपहास सपूतो ॥ ५ ॥
आर्यवंश हो, दस्यु-वंशके लगे बनाने ठाट सपूतो ।
गौरव मिले तुम्हें फिर कैसे ? खोलो नेत्र-कपाट सपूतो ॥ ६ ॥
अपनेको अपना तुम समझो और अन्यको अन्य सपूतो ।
नागर थे, पर कायर होकर, क्यों बनते हो वन्य सपूतो ॥ ७ ॥
विद्या बल वैभवके जो तुम, पहले थे आधार सपूतो ।
हा ! वे ही तुम आज बने हो क्यों जगमें भू-भार सपूतो ॥ ८ ॥
अब भी अवसर है दिखला दो, मानवताके कर्म सपूतो ।
कुछ भी लाज नहीं लगती क्यों, सोचो दैशिक धर्म सपूतो ॥ ९ ॥
क्यों न प्रकट करते हो तुम भी नूतन कला-कलाप सपूतो ।
क्यों प्रलाप करते हो ? सीखो, करना मेल मिलाप सपूतो ॥ १० ॥
सोच समझकर करो प्रेमसे, पुण्य पुरुषके काम सपूतो ।
जिससे नहीं तनिक भी डूबे, आत्म-वंशका नाम सपूतो ॥ ११ ॥
हिन्दीको जननी सम मानो, या जानो निज प्राण सपूतो ।
यदि सचमुच तुम चाह रहे हो, भारतका कल्याण सपूतो ॥ १२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाजसुधारमें सबसे अधिक डर किन लोगोंसे है ?

(लेखक, श्रीयुत बाबू निहालकरणजी सेठी एम. एस. सी. ।)

जैनसमाजमें सामाजिक सुधारका कार्य बहुत दिनोंसे प्रारम्भ हो चुका है और उस कार्यमें सफलता भी बहुत हुई है; किन्तु प्रायः जनसाधारण यह समझता है कि इतना सब प्रयत्न सर्वथा निष्फल हुआ है। कारण इसका वे यह बतलाते हैं कि न तो अभीतक कोई विवाह ऐसे प्रचलित हुए कि जिनमें वर और कन्याका वयस बाल्यकालसे परे समझा जावे, न वृद्ध विवाह रुके हैं, न विधवाओंकी दशा कुछ सुधरी है, न मृत्युके उपलक्ष्यमें आनन्दभोजोंकी कमी हुई है, न भिन्न भिन्न जैन जातियोंमें पारस्परिक विवाहसम्बंधका सूत्रपात हुआ है, न व्यर्थ व्ययहीकी ओर समाजकी दृष्टि गई है और न धार्मिक समझे जानेवाले मेलोंहीका कुछ सुधार हुआ है। यह सब सच है परन्तु इसके सत्य होने पर भी यह कहना उचित नहीं कि इतने दिनोंका प्रयत्न सर्वथा निष्फल हुआ।

मनुष्यका स्वभाव है कि वह सदा नई बातके करनेसे डरता है; इस पर यदि कोई कह दे कि इस नई बातमें अमुक दोष है, अमुक कमी है तब तो यह डर और भी अधिक हो जाता है। विशेष कर इस धर्मप्रधान भारतवर्षमें यदि कोई उनसे कह दे कि इसमें तो धर्मका घात होता है तब उससे इतना डर लगने लगता है कि उसका नाम सुनकर ही कानपर हाथ रखनेको जी चाहता है। उस समय यह भी देखनेका ध्यान नहीं करता कि दोष दिखानेवाला और अधार्मिक बतलानेवाला कौन है, उसकी योग्यता कितनी है, वह किस नीयतसे ऐसा कहता है और जो कुछ वह कहता है वह युक्तिसंगत भी है या नहीं।

नई बातकी सफलताके लिए सबसे कठिन और सबसे अधिक आवश्यक कार्य यही है कि मनुष्यके इस डरको किसी न किसी प्रकार मिटाया जावे और ऐसा प्रयत्न किया जावे कि कमसे कम वह नई बातको सुनने तो लगे। यदि सुनकर उस पर विचार करना भी प्रारम्भ कर दे तब तो बहुत ही अच्छी बात हो।

यही दशा समाजसुधारके कार्यकी है। एक समय था जब इन बातोंको सुनकर लोग केवल हँसते थे। फिर हँसते हँसते गाली गलौज करनेका अवसर आया। ऐसे भी अनेक महात्मा प्रगट हुए जो धर्मकी दुहाई देकर उनका विरोध करने लगे। अब ऐसा समय है कि इन सब बातोंको छोड़कर समाज यह प्रयत्न करने लगा है कि युक्तिद्वारा इन सुधारोंका खंडन किया जाय। गाली गलौज सर्वथा बन्द नहीं हुए हैं और न कभी हो ही सकते हैं; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अब उन प्रश्नों पर विचार करना प्रारम्भ हो गया है। चाहे विचार किसी भी बुद्धिसे किया जावे, किन्तु जब कोई युक्तिद्वारा दोष निकालनेका प्रयत्न करेगा तब यह अनिवार्य है कि उसे उसकी उत्तमताका भी ज्ञान हो जायगा। फिर चाहे वह दिखलानेको विरोध करता ही रहे, किन्तु आन्तरिक विश्वासके विरुद्ध कोई भी मनुष्य बलपूर्वक कोई बात नहीं कह सकता। अशिक्षित समाजको प्रसन्न रखनेके लिए वह कितना ही अधिक विरोध करनेका प्रयत्न करे, किन्तु उसके विरोधमें स्वाभाविकता, और सत्य न होनेसे उसका प्रभाव किसी पर पड़ नहीं सकता और पड़ भी जाय तो ठहर नहीं सकता।

यदि इस दशा पर समाजसुधार पहुँच चुका है तब यह कैसे कहा जा सकता है कि सफलता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हुई ? जब हिन्दी जैनगजटने भी विधवा-विवाहके विरुद्ध हटवादसे नहीं किन्तु युक्तिसे काम लेनेकी भी चेष्टाका प्रारम्भ कर दिया है तब आन्दोलनकी निष्फलता कैसी ? यही तो सबसे कठिन कार्य था और यदि इसहीमें सफलताके चिह्न दिखलाई देते हैं तब निराशा क्यों ?

जो लोग इस सुधारके कार्यमें लगे हैं उन्हें इस बातको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि यह निराशा उत्पन्न करनेवाले वे ही लोग है जो सुधारके विरोधी हैं। उनका यह भी एक अस्त्र है। क्योंकि यदि सुधारकोंमें निराशाको स्थान मिल गया तो यह निश्चय है कि सब बातें युक्ति-संगत, लाभदायक और सत्य होने पर भी उनका कार्य ढीला हो जायगा और सम्भवतः निर्बल होने पर भी विरोधियोंकी जीत हो जायगी। पूजनीय पं० मदनमोहन मालवीयने हालहीमें हिन्दूविश्वविद्यालयमें एक व्याख्यानमें कहा था कि "निराशासे और मुझसे वैर है।" उनका भाव यह भी था कि यदि सफलताके चिह्न न भी दिखलाई दें तब भी आशाको छोड़ देना कायरता है। अतः विरोधियोंके इस अस्त्रका मुकाबला सावधानीसे करना चाहिए।

किन्तु इस लेखमें मेरी इच्छा एक और ही बातकी ओर सुधारकोंका ध्यान आकृष्ट करनेकी है। युद्धमें सेनापतियोंको सबसे पहले यह विचार लेना पड़ता है कि शत्रुका बल किस तरफ अधिक है, वह कौन कौन शस्त्र काममें ला रहा है और उनसे बचनेके क्या क्या उपाय हैं। किन्तु इनसे भी अधिक ध्यान उन्हें इस बातका रखना पड़ता है कि कहीं अपनी ही सेनामें तो कोई शत्रुका पक्षपाती नहीं है। क्योंकि शत्रु जो वार करता है वह प्रकट रूपसे करता है और उससे बचनेका उपाय भी आसानीसे हो जाता है। किन्तु जो मित्र बनकर शत्रुका पक्ष ग्रहण करता है उससे बहुत डरना चाहिए; क्योंकि न जाने कब किस दशामें वह वार कर बैठे। और उसका वार भी बहुधा ऐसा होता है कि ज्ञात नहीं होता कि वह भलाई करता है या बुराई।

ठीक इसही प्रकार समाज-सुधारको उनलोगोंसे कुछ अधिक भय नहीं है जो प्रकट रूपसे उसके विरोधी है। क्योंकि जैसा ऊपर लिखा जा चुका है हम उन पर धीरे धीरे विजय प्राप्त कर रहे हैं। वे हमारी सेनाओंद्वारा घिर चुके हैं, और कुछ समयके बाद अवश्य ही उन्हें सन्धि करनी पड़ेगी; क्योंकि उन्हें ज्ञात हो जायगा कि वास्तवमें उनका पक्ष असत्य था।

किन्तु प्रत्येक समाजमें ऐसे लोग बहुत होते हैं जो कहते हैं कि सुधार तो होना चाहिए, किन्तु सहसा नहीं। पहले तो धीरे धीरे समस्त समाजको इस ओर आकृष्ट करना चाहिए और जब मतभेद न रह जाय तब समाजकी ओरहीसे एक नियमद्वारा सुधार कर लिया जायगा। मतभेद रहते भी यदि दो चार मनुष्य ही सुधारके कार्यको कर डालेंगे तो बड़ी हानि होगी। सारा समाज उनके विरुद्ध हो जायगा और फिर उनकी कोई भी न सुनेगा। सुधार भी रक्खा रह जायगा।

यह मत देखनेमें बड़ा सुन्दर जान पड़ता है। सुधारके हितके लिए ऐसी सलाह देनेवालोंको सुधारका विरोधी कहनेकी भी इच्छा नहीं होती और सुधारकोंका काम रोकनेका प्रयत्न करनेके कारण विरोधी लोग भी इनसे प्रसन्न रहते हैं। फल यह होता है कि इन लोगोंका समाजमें बहुत आदर हो जाता है। इनके दोनों हाथों लड्डू रहते हैं। सुधारकने यदि कोई साहसका कार्य किया तो ये उसकी निन्दा करने लगते हैं और धैर्यसे कार्य करनेकी सलाह देते हैं। विरोधी लोग कहने लगते हैं—"देखो साहब,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमुक महाशय भी तो सुधारके पक्षपाती हैं । वे भी कहते हैं कि कार्य अनुचित हुआ । "

अतः सुधारके पक्षपातियोंको सोच रखना चाहिए कि ये ही लोग उनके कार्यमें सबसे अधिक विघ्न डालनेवाले हैं । ये मित्र बनकर भी शत्रुकी सहायता करते हैं । इन्हींसे सदा सचेत रहनेकी आवश्यकता है । इससे यह मतलब नहीं कि इनसे भी हम विरोध कर लें; किन्तु इनकी सलाह मानना अवश्य ही भयंकर है । यदि हम यह निश्चय कर लें कि इनकी सलाह न मानेंगे तब इनसे अधिक हानिकी सम्भावना नहीं, क्योंकि इनके लिए प्रकट रूपसे विरोधियोंमें मिल जाना भी अब असम्भव होगया है ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि ये लोग ऐसा कार्य समाजमें आदर पानेकी इच्छासे करते हैं । किन्तु इससे ऐसा न समझना चाहिए कि ये हृदयसे भी सुधारके विरोधी होते हैं । मेरा अनुमान है कि अंतरंग इच्छा इनकी भी सुधारके पक्षमें होती है; किन्तु कमी इस बातकी है कि इनमें साहस नहीं होता । अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिए जो कष्ट सहना पड़ता है उसके लिए ये लोग तैयार नहीं हैं । इनकी दशा प्रायः उस अफीमची जैसी है जो बेर खानेकी इच्छा रहने पर भी पास पड़ा हुआ बेर अपने हाथसे उठाकर मुँहमें रखनेका कष्ट नहीं उठाना चाहता था और उधरसे जानेवाले पथिकसे कहता था कि कृपा कर इस बेरको मेरे मुँहमें डाल दीजिए ।

इसही प्रकार सुधारकके इच्छुक होने पर भी इनकी आत्मा ऐसे पथिककी खोजमें रहती है जो कष्ट स्वयं सह ले और सफलताका आनन्द इन्हें मनाने दे । यदि इतना ही होता तो हमें इनकी शिकायत करनेकी आवश्यकता न होती; किन्तु ये लोग अपनी अकर्मण्यता और बोदेपनको छुपानेके लिए जिस मार्गका अवलम्बन करते हैं उससे अवश्य ही नवयुवक साहसी सुधारकोंका उत्साह कम हो जाता है और उनके कार्यमें बाधा पड़ती है ।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि इन लोगोंसे इतना भय करनेकी तो कोई आवश्यकता नहीं देख पड़ती । सुधार ये भी चाहते हैं । केवल धीरे धीरे करना चाहते हैं । इसमें बुराई क्या है ? क्यों कि कहा है कि खरहे और कछुएकी दौड़में धीरे धीरे चलनेवाला कछुआ ही अन्तमें जीतता है ।

किन्तु यह समझनेमें अधिक कठिनाई नहीं होगी कि इन लोगोंकी कछुएसे तुलना नहीं की जा सकती । कछुआ तो चलनेका काम स्वयं ही करता है । वह इसमें किसीका मुँह नहीं ताकता । किन्तु ये लोग उस अफीमचीकी भाँति खुद तो कुछ करना नहीं चाहते; पथिककी राह देखते हैं । और अपनी सुस्तीको उचित दिखानेके लिए दूसरोंको भी काम न करनेका उपदेश देते हैं । जो लोग वास्तवमें काम करते हैं उनके लिए कछुएका उदाहरण वास्तवमें लाभदायक है । उन्हें यह अवश्य ही उचित है कि चाहे कार्य धीरे धीरे करें, किन्तु मन लगाकर जब तक समाप्त न हो जाय करते ही रहें । खरहेकी भाँति कभी बहुत जल्दबाजी करके कभी सर्वथा शिथिल हो बैठना किसी दशामें भी उचित नहीं कहा जा सकता । हाँ, यदि कोई समाप्ति तक अविश्रान्त परिश्रम करते रहनेकी भी शक्ति रखता हो और कछुएसे आधिक वेगसे चल भी सके तो उसकी हमें प्रशंसा ही करनी पड़ेगी ।

इसके अतिरिक्त यह भी न भूल जाना चाहिए कि इतिहास इसमें हमें क्या शिक्षा देता है । क्या आजतक कभी कोई नई बात मनुष्यने ग्रहण की है जिसे किसी न किसी महापुरुषने कष्ट सह कर, विरोधकी पर्वाह न करके स्वयं न कर डाला हो ! बड़ी बातोंको जाने दीजिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कारखानोंमें मशीनोंका प्रयोग करनेमें भी कितना विरोध हुआ था! पृथ्वीके भ्रमणका सिद्धान्त स्थिर करनेवाले वैज्ञानिकोंको कितना कष्ट सहना पड़ा था! चेचकका टीका कितने विरोधके बाद प्रचलित हुआ है!

जब इन साधारण बातोंका यह हाल है तब जो बातें मनुष्यके जीवनसे निकट सम्बन्ध रखती हैं उनकी क्या कथा! क्या तीर्थंकर, बुद्धदेव, ईसा मसीह या मुहम्मद साहिब इस बातका इंतजार करते रहे थे कि लोग उनके मत-को पहले अच्छा समझने लगें तब उसका खुल्लम खुल्ला प्रचार करें और क्या ऐसा न करनेसे उनमेंसे अनेकोंको दुःसह कष्ट नहीं सहने पड़े? और क्या उन्ही कष्टोंका परिणाम यह नहीं है कि आज लाखों करोड़ों मनुष्य उनके उपदेशोंसे लाभ उठा रहे हैं? आधुनिक बातोंको लीजिए। पारसियोंमें जब पर्दा दूर किया गया तब क्या कोई पंचायत बैठकर ऐसा एक नियम बना था? या किसी साहसी पुरुषने ही उपने उदाहरणसे इस सुधारकी नीव रक्खी? विदेश-यात्रा काश्मीरी पंडितोंमें क्या सर्व सम्मतिसे स्वीकार हो गई तब ही किसीने विलायत जानेका साहस किया अथवा विपरीत इसके पहले किसी साहसी पुरुषके वहाँसे लौट आने ही पर यह मत स्वीकार किया गया?

इन सब बातोंमें इतिहास स्पष्ट कहता है कि साधारण मनुष्य केवल अनुकरण कर सकते हैं। नवीन बातका आरंभ सदा कोई एक साहसी व्यक्ति ही करता है। समाज सर्व सम्मतिसे कभी कोई नया नियम नहीं बनाता। उसे तो ऐसा जबर्दस्ती करना पड़ता है। अतः यदि सुधार अभीष्ट है तो जिन लोगोंमें ऐसे नये कार्य करनेका साहस है उन्हें जो बातें रोकती हैं, जो जो लोग उनका उत्साह घटाना चाहते हैं वे अवश्य ही हानिकर हैं। उनसे सचेत रहना अवश्य ही बुद्धिमानी है।

विचित्र ब्याह।

[ले०, श्रीयुत पं० रामचरित उपाध्याय।]

चतुर्थ सर्ग।

जैसे तैसे रामदेव की, क्रिया सुशीलाने कर दी,
कुछी दिनोंमें उसके मनमें, स्वस्थिति आशाने कर दी।
विस्मृतिने भी दिया सहारा, रामदेव कुछ भूल गये,
हरिसेवकने उसके उरमें, उपजाये सुख-मूल नये॥ १॥

आशाका है अजब तमासा, मृतमें जीवन भरती है,
विस्मृति उसके पूर्व दुखोंको झटपट आकर हरती है।
दोनों ही हैं मनो सहेली, दोनों ही रहती हैं साथ।
दुखी जन्तुके सँगमें दुखको; दोनों ही सहती हैं साथ॥ २॥

कहा सुशीलासे आशाने, हरिसेवक पण्डित होगा,
उससे फिर सुख तुझे मिलेगा, देश मात्र मण्डित होगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विस्मृतिने भी कहा उसी क्षण, निजपतिका मत ध्यान धरो,
आगे मुख हो चलो निरन्तर, पीछेको मत कान करो ॥ ३ ॥

हरिसेवकका शास्त्र-रीतिसे, कर्णवेध-संस्कार हुआ,
शिष्टाचार हुआ पूज्योंका, और मंगलाचार हुआ ।
जगमें नहीं किसीकी भी स्थिति, एक रंग रह जाती है,
जो रोती थी प्रथम सुशीला, आज वही हँस गाती है ॥ ४ ॥

सुदिन सुलग्न सोध कर उसका विद्यारम्भ हुआ सुखसे,
तुरत उसे वह आ जाता था, सुनता था जो गुरु-मुखसे ।
विद्याध्ययन देखकर सुतका, सुखी सुशीला हुई बड़ी,
यद्यपि उसे अर्थकी चिन्ता—मनमें थी हरघड़ी कड़ी ॥ ५ ॥

रामदेवके रहने पर भी, यदपि सुशीला धनी न थी,
किन्तु आजसी वस्तु अपावन, कभी जातिमें बनी न थी ।
जो जन उसका कहलाता था, हुआ पराया आज वही,
जिस पर रहा भरोसा; उसके—काम न आया आज वही ॥ ६ ॥

जहाँ सुशीला जा पड़ती थी, भूमि-भार हो जाती थी,
सीधे मुख वह था न बोलता, जब वह जिसे बुलाती थी ।
यदि विचार कर देखा जावे, तो स्थिर होगी बात यही,
दीन बराबर कभी दुखी हैं, नारकीय भी जीव नहीं ॥ ७ ॥

नीचोंसे भी नीच वही है जिसके पास न हो कलदार,
गुण-सागर भी हो जाता है जग में निर्धन जन बेकार ।
चाहे वह रूठे या रीझे, हानि, लाभकी बात नहीं,
ऊसर भूपर गरल-कुसुम या, खिल सकता है कमल कहीं ? ॥ ८ ॥

निर्धन जन हो निर्बल होता, निर्बल हो अधिकार-विहीन,
अनधिकारसे परिभव सहता, अपमानित हो शोकविलीन ।
शोकातुर हो वह मर जावे, यदि आशाका मिले न संग,
आशा डोरी बँधा विश्व है, उड़ती नभमें यथा पतंग ॥ ९ ॥

यदि न सहारा आशा देती, कभी सुशीला मर जाती,
या उस हतहृदया अबलाकी, सुधिबुधि वरवस हर जाती ।
होनहार पर लख निज सुतको, उसके सब दुख दूर गये,
और हृदय-मन्दिरमें सुन्दर, जगे मनोरथ नये नये ॥ १० ॥

सुत मिला जिसको गुरु-भक्त हो, स्वजनमें अनुरक्त सशक्त हो ।
अति सुखी उसको अनुमानिए, सुकृतका उसके फल जानिए ॥ ११ ॥

यदि गुणी विनयी वर विज्ञ हो, तनय, और नयज्ञ कृतज्ञ हो ।
तब भला जननी दुख क्यों सहे ? हतमनोरथ होकर क्यों रहे ? ॥ १२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो कुछ हो उद्योगशील थी बड़ी सुशीला, लिखना पढ़ना हरिसेवकका पड़ा न ढीला
दुख वह सहती स्वयं किन्तु सुतको सुख देती, सुतको विद्यादान दिला यशको थी लेती १३

ज्ञान-दानके तुल्य अन्यका दान नहीं है, क्योंकि विज्ञके तुल्य अन्यका मान नहीं है।
रजत-कनक-भू-रत्न सदा क्या रह सकते हैं? क्या विद्याको नाशवान भी कह सकते हैं? ॥

खो जाती है कभी हाथमें संपति आकर, पर देती है साथ सदा विद्या जीवन भर।
कंचन पाकर मनुज पाप भी कर सकता है, किन्तु विज्ञ क्या पाप-गर्तमें गिर सकता है? ॥१५॥

बुधजन अपने नाम अमिट चाहें तो कर दें, निर्बलमें भी महाशक्ति चाहें तो भर दें।
कठिन समस्या-पूर्ति विज्ञ ही कर सकता है, दुःख-भार क्या अज्ञ देशका हर सकता है? १६

कल्पवृक्ष है काठ उपल चिन्तामणि भी है, विद्याके वे तुल्य इसीसे नहीं कभी हैं।
पारस मणि निजतुल्य किसीको क्या करता है? पर अज्ञोंको विज्ञ, विज्ञजन कर सकता है॥

इसी लिए जो ज्ञान-दान देते दिलवाते, वे प्राणी हैं धन्य पुण्य अक्षय हैं पाते।
उनके यशको सदा जगतमें बुध गाते हैं, उनके दोनों लोक जगतमें बन जाते हैं ॥ १८ ॥

इसी बातको ठीक सुशीला भी कहती थी, भले काममें सदा सती तत्पर रहती थी।
रक्तनीरको एक किया दृढ़तासे उसने, तनय पढ़ाना ठान लिया स्थिरतासे उसने ॥१९॥

हरिसेवक भी खेल तमाशोंमें न लगा था, केवल विद्याध्ययन रंगमें खूब रँगा था।
उससे कोई द्रोह नहीं कुछ भी करता था, दुर्जनसे रह दूर, सुजनसे वह डरता था ॥२०॥

उसका भाषण बड़ा मधुर था बड़ा सरल था, दुर्व्यसनोंको मान रहा वह महा गरल था।
परकी निन्दा कभी नहीं करनेवाला था, गुरुकी आज्ञा शीस सदा धरनेवाला था ॥२१॥

सत्य वचनका मिला हुआ था, उसे सहारा, परको करना दुखी न उसने कभी विचारा।
कभी स्वप्नमें भी न मांसको उसने देखा, मद उत्पादक वस्तु पापमय उसने लेखा ॥ २२॥

हिन्दीमें सत्प्रेम सदा उसका रहता था, मुक्तकण्ठसे उसे राष्ट्रभाषा कहता था।
हिन्दू, हिन्दी, हिन्द, जपा करता था मनमें, देशोन्नतिका ध्यान उसे रहता था मनमें॥२३॥

विद्यालयको नित्य चला जाता था घरसे, मगमें रुकता कहीं नहीं था, गुरुके डरसे।
उसको आलस-छूत तनिक भी नहीं लगी थी, उसके मनमें पठन-प्रीति निःसीम जगी थी॥

होता था हर साल परीक्षोत्तीर्ण नेमसे, उसे इसीसे सभी देखते रहे प्रेमसे।
छुट्टीमें भी कभी न सोता था वह दिनमें, विलासिताका लेश नहीं था उसके मनमें ॥

इस प्रकार अठारह वर्षका, नव युवा हरिसेवक हो गया।
पर विवाह हुआ उसका नहीं, पड़ गई जननी अति शोकमें ॥ २६ ॥

बहुत सोच किया पर अन्तमें, स्थिर किया मनमें उसने यही—
अब विवाह करूँ जिस भाँति हो, मम कुमार कुमार रहे नहीं ॥ २७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनसार-विवेचनाका परिशिष्ट।

दर्शनसारका लेख छप चुकनेके बाद इसके सम्बन्धमें हमें और भी कुछ बातें ऐसी मालूम हुई हैं, जिनका प्रकाशित कर देना उचित जान पड़ता है।

१ राजवार्तिक अध्याय ८, सूत्र १, वार्तिक १२ में वसिष्ठ, पराशर, जतुकर्ण, वाल्मीकि, व्यास, रोमहर्षि, सत्यदत्त आदिको वैनयिक बतलाया है। लक्षण दिया है—'**सर्वदेवतानां सर्वसमयानां च समदर्शनं वैनयिकत्वम्।**' अर्थात् सब देवोंको और सब मतोंको समान दृष्टिसे देखना वैनयिक मिथ्यात्व है। इस वैनयिक मिथ्यात्वका स्वरूप * भावसंग्रहमें इस प्रकार बतलाया है:—

वेणइयमिच्छदिट्ठी,
हवइ फुडं तावसो हु अण्णाणी।
निग्गुणजणं पि विणओ,
पउज्जमाणो हु गयविवेओ॥ ८८॥
विणयादो इह मोक्खं,
किज्जइ पुणु तेण गद्दहाईणं।
अमुणिय गुणागुणेण य,
विणयं मिच्छत्तनडिएण॥ ८९॥

अभिप्राय यह है कि इस मतके अनुयायी विनय करनेसे मोक्ष मानते हैं। गुण और अवगुणसे उन्हें कोई मतलब नहीं। सबके प्रति—यहाँ तक कि गधे जैसे नीच जीवके प्रति—भी प्रणाम नमस्कार करना उनका धर्म है। यह विवेकरहित तपस्वियोंका मत है।

२ भावसंग्रहमें मस्करिपूरणका कुछ अधिक परिचय दिया है। परिचयकी गाथायें ये हैं:—

मसयरि-पूरणरिसिणो,
उप्पण्णो पासणाहतित्थम्मि।
सिरिवीरसमवसरणे,
अगहियझुणिणा नियत्तेण॥ १७६॥
बहिणिग्गएण उत्तं,
मज्झं एयारसांगधारिस्स।
णिग्गइ झुणी ण, अरुहो,
णिग्गय विस्सास सीसस्स॥ १७७॥
ण मुणइ जिणकहियसुयं,
संपइ दिक्खाय गहिय गोयमओ।
विप्पो वेयब्भासी,
तम्हा मोक्खं ण णाणाओ॥ १७८॥
अण्णाणाओ मोक्खं
एवं लोयाण पयडमाणो हु।
देवो अ णत्थि कोई,
सुण्णं झाएह इच्छाए॥ १७९॥

इनमेंसे १७८ वीं गाथाका अर्थ ठीक नहीं बैठता। ऐसा मालूम होता है कि, बीचमें एकाध गाथा छूट गई है। भावार्थ यह है कि, पार्श्वनाथके तीर्थमें मस्करि-पूरण ऋषि उत्पन्न हुआ। वीर भगवानकी समवसरणसभासे जब वह उनकी दिव्य ध्वनिको ग्रहण किये विना ही लौट आया, वाणीको धारण करनेवाले योग्यपात्रके अभावसे जब भगवानकी वाणी नहीं खिरी, तब उसने बाहर निकल कर कहा कि मैं ग्यारह अंगका ज्ञाता हूँ, तो भी दिव्य ध्वनि नहीं हुई। पर जो जिनकथित श्रुतको ही नहीं मानता है, जिसने अभी हाल ही दीक्षा ग्रहण की है और वेदोंका अभ्यास करनेवाला ब्राह्मण है, वह गोतम (इन्द्रभूति) इसके लिए योग्य समझा गया। अतः जान पड़ता है कि ज्ञानसे

*यह ग्रन्थ हमें हालहीमें जयपुरके एक सज्जनकी कृपासे प्राप्त हुआ है। इसकी एक प्रति दक्खन कालेज पूनाके पुस्तकालयमें भी यह है। छोटासा प्राकृत गाथाबद्ध ग्रन्थ है। इसकी श्लोकसंख्या ७७० है। जयपुरकी प्रतिके लिखे जानेका समय पुस्तकके अन्तमें 'ज्येष्ठ सुदि १२ शुक्र संवत् १५५८' दिया हुआ है। इसके रचयिता विमलसेन गणिके शिष्य देवसेन हैं। दर्शनसारके कर्त्ता देवसेन और ये एक ही हैं, ऐसा इस ग्रन्थकी रचनाशैलीसे और इसके भीतर जो श्वेताम्बरादि मतोंका स्वरूप दिया है, उससे मालूम होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोक्ष नहीं होता है। वह लोगों पर यह प्रकट करने लगा कि अज्ञानसे ही मोक्ष होता है। देव या ईश्वर कोई है ही नहीं। अतः स्वेच्छापूर्वक शून्यका ध्यान करना चाहिए।

भट्टारक लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य पं० वामदेवके बनाये हुए संस्कृत भावसंग्रहके भी हमें इसी समय दर्शन हुए*। यद्यपि पं० वामदेवने इस बातका कहीं उल्लेख नहीं किया है; परन्तु मिलान करनेसे मालूम हुआ कि उन्होंने प्राकृत भावसंग्रहका ही न्यूनाधिकरूपमें अनुवाद करके अपना यह ग्रन्थ बनाया है। मस्करिपूरणके सम्बन्धमें उन्होंने नीचे लिखे ५ श्लोक लिखे हैं। इनसे पूर्वोक्त गाथाओंका अभिप्राय अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है।

.....
वीरनाथस्य संसदि ॥ १८५ ॥
जिनेन्द्रस्य ध्वनिग्राहि-
भाजनाभावतस्ततः।
शक्रेणात्र समानीतो
ब्राह्मणो गोतमाभिधः ॥ १८६ ॥
सद्यः स दीक्षितस्तत्र
सध्वनेः पात्रतां ययौ।
ततः देवसभां त्यक्त्वा
निर्ययौ मस्करीमुनिः ॥ १८७ ॥
सन्त्यस्मदादयोऽप्यत्र
मुनयः श्रुतधारिणः।
तांस्त्यक्त्वा सध्वनेः पात्र-
मज्ञानी गोतमोऽभवत् ॥ १८८ ॥
संचिन्त्यैवं क्रुधा तेन
दुर्विदग्धेन जल्पितम्।
मिथ्यात्वकर्मणः पाका-
दज्ञानत्वं हि देहिनाम् ॥ १८९ ॥

* इसकी एक हस्तलिखित प्रति श्रीयुत पं० उदयलालजी काशलीवालके पास मौजूद है। ग्रन्थकर्त्ताने अपनी गुरुपरम्परा इस प्रकार दी है—विनयचन्द्र-त्रैलोक्यकीर्ति-लक्ष्मीचन्द्र और वामदेव। ग्रन्थके रचनेका समय नहीं दिया।

हेयोपादेयविज्ञानं
देहिनां नास्ति जातुचित्।
तस्मादज्ञानतो मोक्ष
इति शास्त्रस्य निश्चयः ॥ १९० ॥

अर्थात्—वीरनाथ भगवान्के समवसरणमें जब योग्य पात्रके अभावमें दिव्यध्वनि निर्गत नहीं हुई, तब इन्द्र गोतम नामक ब्राह्मणको ले आये। वह उसी समय दीक्षित हुआ और दिव्यध्वनिको धारण करनेकी उसी समय उसमें पात्रता आ गई। इससे मस्करिपूरण मुनि सभाको छोड़कर बाहर चला आया। यहाँ मेरे जैसे अनेक श्रुतधारी मुनि हैं, उन्हें छोड़कर दिव्यध्वनिका पात्र अज्ञानी गोतम हो गया, यह सोचकर उसे क्रोध आगया। मिथ्यात्वकर्मके उदयसे जीवधारियोंको अज्ञान होता है। उसने कहा देहियोंको हेयोपादेयका विज्ञान कभी हो ही नहीं सकता। अत एव शास्त्रका निश्चय है कि अज्ञानसे मोक्ष होता है।

दर्शनसारकी वचनिकामें + मस्करिपूरणके

+ बाम्बे रायल एशियाटिक सुसाइटीकी रिपोर्टमें डा० पिटर्सनने 'दर्शन-सार वचनिका' का एक जगह हवाला दिया है और लिखा है कि यह ग्रन्थ जयपुरमें है। तदनुसार हमने इसकी खोज करनी शुरू की और हमें जयपुरसे तो नहीं; परन्तु देववन्दसे श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजीके द्वारा इसकी एक प्रति प्राप्त हो गई। इसके कर्त्ता पं० शिवजीलालजी हैं। माघ सुदी १० सं० १९३३ को सवाई जयपुरमें यह बनकर समाप्त हुई है। इसकी श्लोकसंख्या लगभग ३५०० और पत्र १६२ हैं। इसमें गाथाओंका अर्थ तो बहुत ही संक्षेपमें लिखा है, संस्कृत छाया भी नहीं दी है; परन्तु प्रत्येक धर्मका सिद्धान्त और उसका खण्डन खूब विस्तारसे दिया है। मूल गाथाओंमें जिन मतोंका उल्लेख है, उनके सिवाय मुसलमान और ईसाई मतोंके विषयमें भी बहुत कुछ लिखा है। बहुतसे मतोंके विषयमें आपने बड़ी गहरी भूलें की हैं। जैसे मस्करिपूरणको मुसलमान धर्मका मूल मान लेना और यापनीय संघको मूर्तिपूजा-विरोधी लोंकागच्छ का मान लेना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्धमें नीचे लिखे दो श्लोक उद्धृत किये गये हैं; पर यह नहीं लिखा कि ये किस ग्रन्थसे लिये गये हैं। कुछ अशुद्ध और अस्पष्ट भी जान पड़ते हैं:-

पूर्वस्यां वामनेनैव
मदनेन च दक्षिणे।
पश्चिमस्यां मुसंडेन
कुलकेनोत्तरेऽपि तत् ॥
मस्कपूरणमासाद्य
चत्वारोऽपि दिवानिशम्।
अज्ञानमतमासाद्य (?)
लोकान्भ्रष्टशतामय (?) ॥

अर्थात् पूर्वदिशामें वामनने, दक्षिणमें मदनने, पश्चिममें मुसण्डने और उत्तरमें कुलकने मस्कपूरणके अज्ञान मतका प्रचार किया और लोगोंको भ्रष्ट किया। वचनिकाकारका कथन है कि ये चारों राजा थे।

३ द्राविड़ संघके विषयमें दर्शनसारकी वचनिकाके कर्त्ता एक जगह जिनसंहिताका प्रमाण देते हुए कहते हैं कि 'सभूषणं सवस्त्रं स्यात् बिम्बं द्राविडसंघजम्'-द्रविड़ संघकी प्रतिमायें वस्त्र और आभूषणसहित होती हैं। लिखा है-"जो बिम्ब गहणां पहरयो होय तथा अर्ध पल्यंकासन निर्ग्रन्थ हो है सो द्राविड़ संघका है।" आगे किसी ग्रन्थसे नीचे लिखे दोहे उद्धृत किये हैं:-

तैल पान प्रासुक कहैं,
लवण खान है निन्द्य।
भातनको यह (?) धौतजल,
सदा पान अनवद्य ॥ १ ॥
सिंहासन छत्रत्रयी,
आसन अर्ध पल्यंक।
पंचफणी प्रतिमा जहाँ,
द्राविड संघ सवंक ॥ २ ॥
उत्तरीय अरु अंशु अध,
उज्ज्वलदोय पुनीत।
कमलमाल पद्मासनी,
द्राविडजती सुमीत ॥ ३ ॥
रुद्राक्षसूत्रकुकण्ठधर,
मानस्तंभविशेष।
दक्षिण द्राविड जानिये,
धर्मचक्र भुजशेष ॥ ४ ॥
पंच द्राविड मान ये,
तिलक मान (?) रुद्राक्ष।
माल भस्म मालै जपै,
त्रिकसूत्री कोपीन (?) ॥ ५ ॥
उत्तर द्राविड जानिये,
काल चतुर्थज भेक।
पंचमके दो भेद जुत,
कल्प अकल्प अनेक ॥ ६ ॥

दूसरे दोहेमें द्राविड संघकी प्रतिमाका स्वरूप यह बतलाया है कि, वह अर्धपल्यंकासन होती है, उसके मस्तक पर सर्पके पाँच फण होते हैं, वह सिंहासन पर स्थित होती है और तीन छत्र उसके ऊपर रहते हैं। इसमें यह नहीं कहा है कि, वह वस्त्र और आभूषणोंसे युक्त होती है। पर जिनसंहिताका उक्त श्लोकार्ध द्राविड प्रतिमाको वस्त्राभूषणसहित बतलाता है। मालूम नहीं, यह जिनसंहिता किसकी बनाई हुई है और कहाँ तक प्रामाणिक है। अभी तक हमें इस विषयमें बहुत सन्देह है कि, द्राविड संघ सग्रन्थ प्रतिमाओंका पूजक होगा।

उक्त छह दोहे भी मालूम नहीं किस ग्रन्थके हैं। वचनिकाकारने इन्हें कहींसे उठाकर रख दिया है, पर यह नहीं लिखा कि इनका रचयिता कौन है। अन्तके चार श्लोकोंमें द्राविड़ संघके यतियोंका वेश बतलाया है और उनके कई भेद किये हैं; परन्तु दोहोंकी रचना इतनी अस्पष्ट है, और प्रतिके लेखकने भी उन्हें कुछ ऐसा अस्पष्ट कर दिया है, कि उनका पूरा पूरा अभिप्राय समझमें नहीं आता। इतना मालूम होता है कि इस संघके यति वस्त्र पहनते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

थे, माला आदि धारण करते थे और तिलक भी लगाते थे ।

वचनिकाके कर्त्ताने लिखा है कि १ पंचोपाख्यान, २ सप्ताशीति, और ३ सिद्धान्तशिरोमणि ये तीन ग्रन्थ द्रविड संघके हैं । संभव है कि इन ग्रन्थोंकी प्राप्ति जयपुरके किसी भण्डारसे हो जाय । यदि ये मिल जायँ, तो इस संघके विषयमें हमारी जो गाढ़ अज्ञानता है, वह अनेक अंशोंमें विरल हो सकती है ।

४ श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्तिका इतिहास देवसेनसूरिकृत भावसंग्रहमें इस प्रकार दिया है:–

छत्तीसे वरिस सए
विक्कमरायस्समरणपत्तस्स ।
सोरट्ठे उप्पण्णो
सेवडसंघो हु वलहीए ॥ ५२ ॥
आसि उज्जेणिणयरे,
आयरिओ भद्दबाहुणामेण ।
जाणिय सुणिमित्तधरो,
भणिओ संघो णिओ तेण ॥ ५३ ॥
होहइ इह दुब्भिक्खं,
बारह वरसाणि जाव पुण्णाणि ।
देसंतराय गच्छह,
णियणियसंघेण संजुत्ता ॥ ५४ ॥
सोऊण इयं वयणं,
णाणादेसेहिं गणहरा सव्वे ।
णियणियसंघपउत्ता,
विहरीआ जच्छ सुब्भिक्खं ॥५५॥
एक्क पुण संति णामो,
संपत्तो वलहि णाम णयरीए ।
बहुसीससंपउत्तो,
विसए सोरट्ठए रम्मे ॥ ५६ ॥
तत्थ विगयस्स जायं,
दुब्भिक्खं दारुणं महाघोरं ।
जत्थ वियारिय उयरं,
खद्धो रंकेहि कूरुत्ति ॥ ५७ ॥
तं लहिऊण णिमित्तं,
गहियं सव्वेहिं कंवलीदंडं ।
दुद्धिय पत्तं च तहा,
पावरणं सेयवत्थं च ॥ ५८ ॥
चत्तं रिसिआयरणं,
गहिया भिक्खाय दीणवित्तीए ।
उवविसिय जाइऊणं,
भुत्तं वसहीसु इच्छाए ॥ ५९ ॥
एवं वट्टंताणं कित्तिय
कालम्मि चावि परियलिए ।
संजायं सुब्भिक्खं,
जंपइ ता संति आइरिओ ॥ ६० ॥
आवाहिऊण संघं,
भणियं छंडेह कुत्थियायरणं ।
णिंदिय गरहिय गिण्हह,
पुणरविचरियं मुणिंदाणं ॥ ६१ ॥
तं क्यणं सोऊणं
उत्तं सीसेण तत्थ पढमेण ।
को सक्कइ धारेउं,
एयं अइ दुद्धरायरणं ॥ ६२ ॥
उववासो य अलाभो,
अण्णे दुसहाइ अंतरायाइं ।
एक्कट्ठाणमचेलं,
अज्जायणं बंभचेरं च ॥ ६३ ॥
भूमीसयणं लोचो
वे वे मासंहिं असहिणिज्जो हु ।
वावीस परिसहाइं
असहिणिज्जाइं णिच्चंपि ॥ ६४ ॥
जं पुण संपइ गहियं,
एयं अम्हेहि किंपि आयरणं ।
इह लोयसुक्खयरणं,
ण छंडिमोहु दुस्समे काले ॥ ६५ ॥
ता संतिणा पउत्तं,
चरियपभट्ठेहिं जीवियं लोए ।
एयं ण हु सुंदरयं,
दूसणयं जइणमग्गस्स ॥ ६६ ॥
णिग्गंथं पव्वयणं,
जिणवरणाहेण अक्खियं परमं ।
तं छंडिऊण अण्णं,
पवत्तमाणेण मिच्छत्तं ॥ ६७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ता रूसिऊण पहओ,
सीसे सीसेण दीहदंडेण ।
थविरो घाएण मुओ,
जाओ सो विंतरो देवो ॥ ६८ ॥
इयरो संघाहिवई,
पयडिय पासंड सेवडो जाओ ।
अक्खइ लोए धम्मं,
सग्गंथे अत्थि णिव्वाणं ॥ ६९ ॥
सच्छाइ विरइयाइं
णियणिय पासंड गहियसरिसाइं ।
वक्खाणिऊण लोए,
पवत्तियो तारिसायरणे ॥ ७० ॥
णिग्गंथं दूसित्ता,
णिंदित्ता अप्पणं पसंसित्ता ।
जीवे मूढयलोए,
कयमाय (?) गेहियं बहुं दव्वं ॥७१॥
इयरो विंतर देवो,
संती लग्गो उवद्दवं काउं ।
जंपइ मा मिच्छत्तं,
गच्छह लहिऊण जिणधम्मं ॥७२॥
भीएहि तस्स पूआ,
अट्ठविहा सयलदव्वसंपुण्णा ।
जा जिणचंदे रइया,
सा अज्जवि दिण्णिया तस्स ॥ ७३ ॥
अज्जवि सा वलिपूया,
पढमयरं दिंति तस्स णामेण ।
सो कुलदेवो उत्तो,
सेवडसंघस्स पुज्जो सो ॥ ७४ ॥
इय उप्पत्ती कहिया,
सेवडयाणं च मग्गभट्ठाणं ।
एत्तो उड्ढं वोच्छं,
णिसुणह अण्णाणमिच्छत्तं ॥ ७५ ॥

अर्थ—विक्रमराजाकी मृत्युके १३६ वर्ष बाद सोरठ देशकी वल्लभी नगरीमें श्वेताम्बर संघ उत्पन्न हुआ । ५२ । (उसकी कथा इस प्रकार है) उज्जयनी नगरीमें भद्रबाहु नामके आचार्य थे । वे निमित्त ज्ञानके जाननेवाले थे, इस लिए उन्होंने संघको बुलाकर कहा कि एक बड़ा भारी बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाला दुर्भिक्ष होगा । इस लिए सबको अपने अपने संघके साथ और और देशोंको चले जाना चाहिए । ५३–५४ । यह सुनकर समस्त गणधर अपने अपने संघको लेकर वहाँसे उन उन देशोंकी ओर विहार कर गये, जहाँ सुभिक्ष था । ५५ । उनमें एक शान्ति नामके आचार्य भी थे, जो अपने अनेक शिष्योंके सहित चलकर सोरठ देशकी वल्लभी नगरीमें पहुँचे । ५६ । परन्तु उनके पहुँचनेके कुछ ही समय बाद वहाँ पर भी बड़ा भारी अकाल पड़ गया । भुखमरे लोग दूसरोंका पेट फाड़ फाड़कर और उनका खाया हुआ भात निकाल निकाल कर खा जाने लगे । ५७ । इस निमित्तको पाकर—दुर्भिक्षकी परिस्थितिके कारण—सबने कम्बल, दण्ड, तूम्बा, पात्र, आवरण (संथारा) और सफेद वस्त्र धारण कर लिये । ५८ । ऋषियोंका (सिंहवृत्तिरूप) आचरण छोड़ दिया और दीनवृत्तिसे भिक्षा ग्रहण करना, बैठ करके, याचना करके और स्वेच्छापूर्वक बस्तीमें जाकर भोजन करना शुरू कर दिया । ५९ । उन्हें इस प्रकार आचरण करते हुए कितना ही समय बीत गया । जब सुभिक्ष हो गया, अन्नका कष्ट मिट गया, तब शान्ति आचार्यने संघको बुलाकर कहा, कि अब इस कुत्सित आचरणको छोड़ दो, और अपनी निन्दा, गर्हा करके फिरसे मुनियोंका श्रेष्ठ आचरण ग्रहण कर लो ॥ ६०–६१ । इन वचनोंको सुनकर उनके एक प्रधान शिष्यने कहा कि अब उस अतिशय दुर्धर आचरणको कौन धारण कर सकता है ? उपवास, भोजनका न मिलना, तरह तरहके दुस्सह अन्तराय, एक स्थान, वस्त्रोंका अभाव, मौन, ब्रह्मचर्य, भूमि पर सोना, हर दो महीनेमें केशोंका लोच करना, और असहनीय बाईस परीषह, आदि बड़े ही कठिन आचरण हैं । ६२–६४ । इस समय हम लोगोंने जो कुछ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आचरण ग्रहण कर रक्खा है, वह इस लोकमें भी सुखका कर्ता है। इस दुःषम कालमें हम उसे नहीं छोड़ सकते। ६५। तब शान्त्याचार्यने कहा कि यह चारित्रसे भ्रष्ट जीवन अच्छा नहीं। यह जैनमार्गको दूषित करना है। ६६। जिनेन्द्र भगवान्ने निर्ग्रन्थ प्रवचनको ही श्रेष्ठ कहा है। उसे छोड़कर अन्यकी प्रवृत्ति करना मिथ्यात्व है। ६७। इस पर उस शिष्यने रुष्ट होकर अपने बड़े डंडेसे गुरुके सिरमें आघात किया, जिससे शान्त्याचार्यकी मृत्यु हो गई और वे मर करके व्यन्तर देव हुए। ६८। इसके बाद वह शिष्य संघका स्वामी बन गया और प्रकट रूपमें सेवड़ा या श्वेताम्बर हो गया। वह लोगोंको धर्मका उपदेश देने लगा और कहने लगा कि सग्रन्थ या सपरिग्रह अवस्थामें निर्वाणकी प्राप्ति हो सकती है। ६९। अपने अपने ग्रहण किये हुए पाषण्डोंके सदृश उसने और उसके अनुयायियोंने शास्त्रोंकी रचना की, उनका व्याख्यान किया और लोगोंमें उसी प्रकारके आचरणकी प्रवृत्ति चला दी। ७०। वे निर्ग्रन्थ मार्गको दूषित बतलाकर उसकी निन्दा और अपनी प्रशंसा करने लगे...। ७१। अब वह जो शान्ति आचार्यका जीव व्यन्तरदेव हुआ था, सो उपद्रव करने लगा और कहने लगा कि, तुम लोग जैनधर्मको पाकर मिथ्यात्व मार्ग पर मत चलो। ७२। इससे उन सबको बड़ा भय हुआ और वे उसकी सम्पूर्ण द्रव्योंसे संयुक्त अष्ट प्रकारकी पूजा करने लगे। वह जिनचन्द्रकी रची हुई या चलाई हुई उस व्यन्तरकी पूजा आज भी की जाती है। ७३। आज भी वह बलिपूजा सबसे पहले उसके नामसे दी जाती है। वह श्वेताम्बर संघका पूज्य कुलदेव कहा जाता है। ७४। यह मार्गभ्रष्ट श्वेताम्बरोंकी उत्पत्ति कही। इससे आगे अज्ञान मिथ्यात्वका स्वरूप कहा जायगा। ७५।

भावसंग्रह विक्रमकी दशवीं शताब्दिका बना हुआ ग्रन्थ है, प्राचीन है, अतएव हमने उस परसे श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्तिकी इस कथाको यहाँ उद्धृत कर देना उचित समझा।

भट्टारक रत्ननन्दिने अपने भद्रबाहुचरित्रका अधिकांश इसी कथाको पल्लवित करके लिखा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी कथाका मूल यही है; परन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थमें इस कथामें जो परिवर्तन किया है, वह बड़ा ही विलक्षण है। उनके परिवर्तन किये हुए कथा-भागका संक्षिप्त स्वरूप यह है— "भद्रबाहु स्वामीकी भविष्यद्वाणी होने पर १२ हजार साधु उनके साथ दक्षिणकी ओर विहार कर गये, परन्तु रामल्य, स्थूलाचार्य और स्थूलभद्र आदि मुनि श्रावकोंके आग्रहसे उज्जयिनीमें ही रह गये। कुछ ही समयमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा और वे सब शिथिलाचारी हो गये। उधर दक्षिणमें भद्रबाहु स्वामीका शरीरान्त हो गया। सुभिक्ष होनेपर उनके शिष्य विशाखाचार्य आदि लौटकर उज्जयिनीमें आये। उस समय स्थूलाचार्यने अपने साथियोंको एकत्र करके कहा कि शिथिलाचार छोड़ दो; पर अन्य साधुओंने उनके उपदेशको न माना और क्रोधित होकर उन्हें मार डाला। स्थूलाचार्य व्यन्तर हुए। उपद्रव करने पर वे कुलदेव मानकर पूजे गये। इन शिथिलाचारियोंसे 'अर्द्ध फालक' (आधे कपड़ोंवाले) सम्प्रदायका जन्म हुआ। इसके बहुत समय बाद उज्जयिनीमें चन्द्रकीर्ति राजा हुआ। उसकी कन्या वल्लभीपुरके राजाको ब्याही गई। चन्द्रलेखाने अर्धफालक साधुओंके पास विद्याध्ययन किया था, इस लिए वह उनकी भक्त थी। एक बार उसने अपने पतिसे उक्त साधुओंको अपने यहाँ बुलानेके लिए कहा। राजाने बुलानेकी आज्ञा दे दी। वे आये और उनका खूब धूम धामसे स्वागत किया गया। पर राजाको उनका वेष अच्छा न मालूम हुआ। वे रहते तो थे नग्न, पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऊपर वस्त्र रखते थे। रानीने अपने पतिके हृदयका भाव ताड़कर साधुओंके पास श्वेत वस्त्र पहननेके लिए भेज दिये। साधुओंने भी उन्हें स्वीकार कर लिया। उस दिनसे वे सब साधु श्वेताम्बर कहलाने लगे। इनमें जो साधु प्रधान था, उसका नाम जिनचन्द्र था।"

अब इस बातका विचार करना चाहिए कि भावसंग्रहकी कथामें इतना परिवर्तन क्यों किया गया। हमारी समझमें इसका कारण भद्रबाहुका और श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्तिका समय है। भावसंग्रहके कर्त्ताने भद्रबाहुको केवल निमित्तज्ञानी लिखा है, पर रत्ननन्दि उन्हें पंचम श्रुतकेवली लिखते हैं। दिगम्बर ग्रन्थोंके अनुसार भद्रबाहु श्रुतकेवलीका शरीरान्त वीरनिर्वाणसंवत् १६२ में हुआ है और श्वेताम्बरोंकी उत्पत्ति वीर नि० सं० ६०३ (विक्रमसंवत् १३६) में हुई है। दोनोंके बीचमें कोई साढ़े चारसौ वर्षका अन्तर है। रत्ननन्दिजीको इसे पूरा करनेकी चिन्ता हुई। पर और कोई उपाय न था, इस कारण उन्होंने भद्रबाहुके समयमें दुर्भिक्षके कारण जो मत चला था, उसको श्वेताम्बर न कहकर 'अर्ध फालक' कह दिया और उसके बहुत वर्षों बाद (साढ़े चारसौ वर्षके बाद) इसी अर्धफालक सम्प्रदायके साधु जिनचन्द्रके सम्बन्धकी एक कथा और गढ़ दी और उसके द्वारा श्वेताम्बर मतको चला हुआ बतला दिया। श्वेताम्बरमत जिनचन्द्रके द्वारा वल्लभीमें प्रकट हुआ था, अतएव यह आवश्यक हुआ कि दुर्भिक्षके समय जो मत चला, उसका स्थान कोई दूसरा बतलाया जाय और उसके चलानेवाले भी कोई और करार दिये जायँ। इसी कारण अर्धफालककी उत्पत्ति उज्जयिनीमें बतलाई गई और उसके प्रवर्तकोंके लिए स्थूलभद्र आदि नाम चुन लिये गये। स्थूलभद्रकी श्वेताम्बर सम्प्रदायमें उतनी ही प्रसिद्धि है जितनी दिगम्बर सम्प्रदायमें भगवान् कुन्दकुन्दकी। इस कारण यह नाम ज्योंका त्यों उठा लिया गया और दूसरे दो नाम नये गढ़ डाले गये। वास्तवमें 'अर्धफालक' नामका कोई भी सम्प्रदाय नहीं हुआ। भद्रबाहुचरित्रसे पहलेके किसी भी ग्रन्थमें इसका उल्लेख नहीं मिलता। यह भट्टारक रत्ननन्दिकी खुदकी 'ईजाद' है।

श्वेताम्बराचार्य जिनेश्वरसूरिने अपने 'प्रमालक्षण' नामक तर्कग्रन्थके अन्तमें श्वेताम्बरोंको आधुनिक बतलानेवाले दिगम्बरोंकी ओरसे उपस्थित की जानेवाली इस गाथाका उल्लेख किया है:—

छव्वास सएहिं नउत्तरेहिं
तइया सिद्धिंगयस्स वीरस्स।
कंबलियाणं दिट्ठी
वलहीपुरिए समुप्पण्णा॥

अर्थात् वीर भगवानके मुक्त होनेके ६०९ वर्ष बाद (विक्रमसंवत् १४० में) वल्लभीपुरमें काम्बलिकोंका या श्वेताम्बरोंका मत उत्पन्न हुआ। मालूम नहीं, यह गाथा किस दिगम्बरी ग्रन्थकी है। इसमें और दर्शनसारमें बतलाये हुए समयमें चार वर्षका अन्तर है। यह गाथा उस गाथासे बिलकुल मिलती जुलती हुई है जो श्वेताम्बरोंकी ओरसे दिगम्बरोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कही जाती है। और जो पृष्ठ २६५ में उद्धृत की जा चुकी है।

७ श्रीश्रुतसागरसूरिने षट्पाहुड़की टीकामें जैनाभासोंका उल्लेख इस प्रकार किया है:—

"गोपुच्छिकानां मतं यथा-इत्थीणं पुण दिक्खा०। श्वेतवाससः सर्वत्र भोजनं प्रासुकं मांसभक्षिणां गृहे दोषा नास्तीति वर्णलोपः कृतः।.....द्राविडा सावद्यं प्रासुकं च न मन्यन्ति। उद्भोजनं निरासं कुर्वन्ति। यापनीयास्तु वै गर्दभा इव ससरा (?)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इव उभयं मन्यन्ते । रत्नत्रयं पूजयान्ति, कल्पं च वाचयन्ति, स्त्रीणां तद्भवे मोक्ष केवलिजिनानां कवलाहारं परशासने सग्रन्थानां मोक्षं च कथयन्ति । निः पिच्छिकाः मयूरपिच्छादिकं न मन्यन्ते । उक्तं च ढाढसीगाथासुः-

पिच्छिण हु सम्मत्तं
करगहिए मोरचमरडंबरए ।
अप्पा तारइ अप्पा
तम्हा अप्पा वि झायव्वो ॥ "

भावार्थः-गोपुच्छक या काष्ठासंघी स्त्रियोंके लिए छेदोपस्थापनाकी आज्ञा देते हैं । श्वेताम्बर सर्वत्र भोजन करना उचित मानते हैं । उनकी समझमें मांसभक्षकोंके यहाँ भी प्रासुक भोजन करनेमें दोष नहीं है । इस तरह उन्होंने वर्णाश्रमका लोप किया है । यापनीय दोनोंको मानते हैं । रत्नत्रयको पूजते हैं, कल्पसूत्रको बाँचते हैं, स्त्रियोंको उसी भवमें मोक्ष, केवलियोंको कवलाहार, दूसरे मतवालोंको और परिग्रहधारियोंको मोक्ष मानते हैं । निःपिच्छिक या माथुरसंघी मोरकी पिच्छी रखना आवश्यक नहीं समझते हैं । जैसा कि 'ढाढसी' नामक ग्रंथमें कहा है कि मोर और चमर (गोपुच्छ) की पिच्छिके आडम्बरमें सम्यक्त्व नहीं है । आत्मा ही आत्माको तारता है । इस लिए आत्माका ही ध्यान करना चाहिए ।

८ दर्शनसार वचनिकाके कर्ता लिखते हैं- "या आचार्यके किये भावसंग्रह प्राकृत, तत्त्वसार प्राकृत, आराधनासार प्राकृत, नयचक्र संस्कृत, आलापपद्धति संस्कृत, धर्मसंग्रह संस्कृत-प्राकृत, इत्यादि केई ग्रन्थ हैं । देवसेन नामके केई आचार्य हो गये हैं । " इसलिए इन सब ग्रन्थोंको अच्छी तरह देखे विना यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये सब ग्रन्थ दर्शनसारके कर्ताके ही हैं । 'नयचक्र' नामके ग्रन्थ दो हैं, एक संस्कृत और दूसरा प्राकृत । प्राकृत नयचक्र माणिकचन्द ग्रन्थमालाके द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है । यह भी देवसेनकृत समझा जाता है । एक नयचक्रका उल्लेख विद्यानन्दस्वामी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ श्लोकवार्तिकमें करते हैं:-

संक्षेपेण नयास्तावद्-
व्याख्यातास्तत्र सूचिताः ।
तद्विशेषाः प्रपञ्चेन
संचिन्त्या नयचक्रतः ॥

—अ० १, सूत्र ३३ ।

परन्तु श्लोकवार्तिक वि० सं० ८०० के लगभग बना हुआ है, अतएव यह नयचक्र दर्शनसारके कर्त्ता देवसेनसे बहुत पहलेका है ।

९ पैंतीसवीं गाथाके 'इत्थीणं पुण दिक्खा' इस पदका अभिप्राय वचनिकाकारने यह लिखा है कि मूलसंघमें स्त्रियोंको 'छेदोपस्थापना' नहीं कही है; पर काष्ठासंघके प्रवर्तकने उन्हें छेदोपस्थापना की, या फिरसे दीक्षा देनेकी आज्ञा दी है । इसके लिए कुन्दकुन्द स्वामीके किसी पाहुड़की यह गाथा दी है:—

इत्थीणं मुणपभवे (?)
अज्जाए छेओपठवणं ।
दिक्खा पुण संगहणं
णत्थीति निरूवियं मुणिहिं ॥

इसी काष्ठासंघके प्रकरणमें देवेन्द्रसेन-नरेन्द्रसेनविरचित सिद्धान्तसार दीपकका उल्लेख किया है और लिखा है कि यह काष्ठासंघका ग्रन्थ है । आश्विन सुदी ५ सं० १९७४ वि० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारे देशका व्यभिचार।

(लेखक, श्रीयुत ठाकुर शिवनन्दनसिंह बी. ए.)

हम भारतवासी यह माने बैठे हैं कि पहले तो भारतमें सदाचार छोड़ व्यभिचारका लेश भी नहीं है और यदि किसी अंशमें है भी, तो नाम-मात्रको। कमसे कम विलायतवालोंके मुकाबले तो इस देशके स्त्रीपुरुष अत्यंत सच्चरित्र हैं। सुबूतमें कहा जाता है कि विलायतमें तो व्यभिचारके ऐसे घर बने हैं जहाँ स्त्रियाँ छिप कर बच्चे जन आती हैं और उन बच्चोंको दाइयाँ जिलाती हैं *। उनके यहाँ परदा न होनेसे जो जिसे चाहता है, अपना लेता है। पराई स्त्रियाँ पराये पुरुषोंके साथ घूमती हैं और मनमाना आनन्द करती हैं; वे रोकी तक नहीं जातीं। असलमें, उनके यहाँ व्यभिचारका विचार ही नहीं है।

यह बात कहाँ तक सत्य है इसका निश्चय करना अत्यन्त कठिन ही नहीं, असम्भव है। हमारे यहाँका रिवाज और रहनेका ढँग उनके रहनसहनसे ऐसा विरुद्ध है कि हम खामखाह उनके चरित्रमें धब्बा लगाते हैं और उनका जीवन यदि पवित्र भी हो तो भी हम उन्हें कलंक लगाते और पापाचारी कहा करते हैं। समाजमें, हर तरहके लोग होते हैं। यद्यपि आगरेके सिविल सर्जन मिस्टर क्लार्क और मिसेस फुलहम + आदिके सदृश कुचरित्र लोग भी इस समाजमें हैं, पर एकदम सारे समाजको अनाचारी मान लेना अन्याय है। कुछ दिनोंके लिये एक स्कूलमें मैं अवैतनिक असिस्टेन्ट हेडमास्तर था। स्कूलके प्रिंसपलसे मुझसे बहुत मेल बढ़ गया था। मैं प्रायः नित्य ही अपना सन्ध्याका समय उनके बँगले पर बिताता था। ये सपरिवार बड़े ही सज्जन थे और सबका बर्ताव मेरे साथ बहुत ही भला था। हम सब एक साथ 'बैड मिन्टन,' 'टेनिस' या 'चेस' आदि खेल खेला करते थे। इसमें मेमसाहिबा और उनकी युवा पुत्रियाँ भी शामिल रहती थीं। वे हारमोनियम या पियानो बजाकर बड़ी आजादीसे गाकर सुनाती थीं, खूब अच्छी तरह दिल खोल कर बातें करती थीं, बहस मुबाहिसा करती थीं, और सभ्यतापूर्ण हँसी दिल्लगी भी करती थीं। अर्थात् जिस आजादीसे दो सभ्य पुरुषमित्र आपसमें व्यवहार रखते हैं उसी तरह प्रिंसपलसाहबके घरकी स्त्री और पुरुष दोनोंके साथ मेरा व्यवहार था।

मेरे इस मेलजोलकी खबर धीरे धीरे स्कूलमें पहुँची। फिर क्या था, हर तरफसे मास्टर लोग कटाक्ष करने लगे। फुरसतके घण्टेमें सब लोग एक साथ बैठकर मेरी मीठी मीठी चुटकियाँ लेने लगे।

दैव-संयोगसे वहाँ एक नये कलेक्टर बदलकर आये। ये अकसर प्रिंसपल साहबके बँगले पर आने लगे। कभी कभी खाना भी यहीं खायँ और रातको भी रह जायँ। मेम साहिबाने तो अपना और कलेक्टरका बंगला एक कर रक्खा था। जब देखिए, वे कलेक्टरसाहबकी जोड़ी पर नजर आती थीं। हवा खाने दोनों एक साथ, नदीकी सैर एक साथ, जहाँ देखिए प्रिंसपलकी मेम और कलेक्टर साहब एक ही साथ दिखाई देते थे। दुर्भाग्यवश एक दिन प्रिंसपल साहब भले चंगे स्कूलसे आये और एकाएक बेहोश हो

---

* छिप कर बच्चे जने जानेका ब्योरा:—

सन्	इँगलैण्ड	फ्रांस	जर्मनी
१९०४	३८,४१२	७१,७३५	१,७४,७९४
१९०५	३६,८१४	७१,५००	१,७७,०६०
१९०६	३९,३१५	७१,४६६	१,७९,१७८
१९०७	३६,१८९	७१,३०५	१,८०,५८७
१९०८	३७,५३१	७१,००९	१,८४,११२
१९०९	३७,५०९	७१,२०३	१,८३,७००

+ Vide the pioneer and the Leader Etc. for March 1913 in which the shameful cose was published.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गये। उनका हृदय बन्द हो गया और वे कुछ ही घण्टोंमें परलोक सिधार गये।

लाश दफना कर मेम साहिबा अपने बँगले पर न आकर साहब कलेक्टरके साथ उन्हींकी मोटर पर सीधी उनके बँगले पर गईं और वहाँ कुल दो सप्ताह रह कर विलायत चली गईं।

इधर स्कूल क्या, सारे शहरके लोग, कलेक्टर और प्रिंसपलकी विधवाको व्यभिचारी–व्यभिचारिणी कहकर गालियाँ देते थे। कोई कोई तो यहाँ तक कह बैठते थे कि प्रिंसपल साहबको इन्हीं दोनोंने विषसे मार डाला है। पर बात यह थी कि स्वर्गीय प्रिंसपल साहब कलेक्टरके बहनोई थे। मेम साहिबा कलेक्टरकी सगी बहिन थीं। रंजका यह हाल था कि कुल दो सप्ताहोंमें वे २४ पौंड अर्थात् १२ सेर घट गई थीं!

भारतके सुप्रसिद्ध मित्र और कांग्रेसके जन्मदाता, मिस्टर ह्यूम लिखते हैं कि—"भारत और विलायतके लाखों परिवारोंका एक साथ मुकाबला करके देखनेसे यह निश्चय करना, या कहना कठिन है कि भारतमें अधिक व्यभिचार है या विलायतमें। समाजमें कमजोर स्त्रियाँ और क्रूर पुरुष सदैव रहते हैं, जिनका चरित्र किसी प्रकारकी उच्च शिक्षासे नहीं सुधर सकता। पर, साथ ही समाजकी दशा सुधारने, स्त्रीपुरुषोंको सदाचारी और सच्चरित्र बनानेका एक मात्र उपाय उचित शिक्षा ही है।" अस्तु, यह किसी तरह नहीं कहा जा सकता कि विलायतके शिक्षित स्त्री या पुरुष व्यभिचारी हैं।

रेनाल्डके झूठे उपन्यास, मिस्ट्रीज आफ कोर्ट आफ लण्डन, स्त्रीत्याग या तलाकके मुकद्दमें, अथवा इधर उधरकी उड़ती हुई खबरें सुन कर किसी राष्ट्रको, या एक दो आदमियोंके कुचरित्र होनेसे सारे समाजको चरित्रभ्रष्ट समझ लेना ठीक नहीं। इन किस्सोंको पढ़ कर, और यह देखकर कि इनके यहाँ परदा नहीं है, स्त्रियों तकका विवाह बहुत देरमें होता है, बहुतसे स्त्रीपुरुष आयुपर्यन्त अविवाहित रहते हैं, हम पक्षपातके रंगीन चश्मेसे उन पर दृष्टि डालते हैं और उनमें सर्वथा पाप ही पाप देखते हैं।

खैर, जो हो; मुझे इस लेखमें यह दिखानो अभीष्ट नहीं है कि भारतमें विलायतसे, अथवा विलायतमें भारतसे अधिक व्यभिचार है। मेरे इस कथनका अभिप्राय केवल इतना ही है कि दूसरोंकी फूली देखना और अपना ढेंढर न देखना अच्छा नहीं। अर्थात् हम दूसरोंका दोष देखकर उन पर हँसते हैं, परन्तु अपने दोष पर आँखें बन्द कर लेते हैं। इस बातकी जाँचके लिए मैं आपको ब्रिटिश राज्यके–जहाँ कि चौबीसों घण्टे सूर्य अस्त नहीं होते–दूसरे नम्बरके शहरमें, भूमण्डलके प्रधान बारहवें नम्बरके शहरमें और भारतके सबसे बड़े शहर कलकत्तेमें, जो जनसंख्या (आबादी) के हिसाबसे बम्बई, दिल्ली, लाहौर आदि सब शहरोंसे बड़ा है, ले चलता हूँ। आइए पहले इस शहरकी जाँच घूमकर करें। घबराइए नहीं। लोगोंको उँगली उठाने दीजिए, हँसने दीजिए। शरमकी बात तो उस समय होती जब हम तमाशबीनी करने या ऐशो अशरत करने जाते होते। हम लोग तो मर्दुमशुमारीके अफसरोंकी तरह देशकी सच्ची दशाकी जाँच करने चल रहे हैं।

मछुआ बाजार।

मीलों तक सड़कके दोनों तरफ मकानोंके ऊपरके खण्डोंमें वेश्यायें खचाखच भरी हैं। ये बहुधा मारवाड़िन और एतद्देशीय हैं। जैसे दरबेमें कबूतर कसे रहते हैं, वैसे ही मकानका किराया अधिक होनेसे एक एक कमरेमें चार चार पाँच पाँच वेश्यायें सड़ा करती हैं। सड़ककी पटरियों पर जगह जगह आठ आठ दश दश बंगाली लड़कियाँ एक कतारमें नाके नाके पर खड़ी हैं। इनका स्थान उसी नाकेके ठीक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामनेवाली गलीमें है। खुले आम, बीच सड़कमें लोग इन अनाथा लड़कियोंसे हँसी मजाक करते हैं। उस झुण्ड या कतारमेंसे जिसकी तरफ इशारा हो जाता है उसे पुरुषके साथ अपने स्थानको प्रस्थान करना पड़ता है—क्या अनोखी सभ्यता है!

लोअर चीतपुर रोडके पीछे कोई महल्ला।

इस महल्लेका नाम स्मरण नहीं आता। यहाँकी दुर्दशा देख कर कलेजा फट जाता है, खून पानी हो जाता है। कई सौ घर बंगाली वेश्याओंके हैं। गलियोंसे भीतरका कोई कोई हिस्सा दिखाई देता है। आनन्दपूर्वक निडर होकर लोग तख्तों-पर मसनद लगाये ताश खेल रहे हैं और लज्जा त्याग कर खुलेआम हर तरहका मजाक कर रहे हैं। सबसे घृणित बात यह है कि, इन वेश्याओंमें बहुतोंकी आयु १० वर्षसे अधिक न होगी। पर हाय पेट, और दरिद्रता और उन्हें गहरी कन्द-रामें गिरानेवाले पुरुषोंकी सभ्यता! हम, तुम तीनोंको नमस्कार करते हैं।

सोना गाछी।

यहाँ भी वही हृदयविदारक दृश्य है। रास्ता चलना मुश्किल है। कामकाजी लोग इस रास्तेसे होकर नहीं जाते, रास्ता बचा कर किसी दूसरी तरफसे निकल जाते हैं। यहाँ वेश्यायें राह चलते हाथ पकड़ लेती हैं। टोपी या डुपट्टा ले भागती हैं। समाजसे गिरी हुई लड़कियोंकी अत्यन्त दीनदशा, बेहयाईकी आखिरी हद्द, और भारतकी सभ्यताकी तीसरी झलक, यहाँ दीखती है।

इनके अतिरिक्त एक महल्ला गोरी (यूरोपियन) वेश्याओंसे भरा है। यहाँ अँगरेज तो बिरले ही देख पड़ते हैं, हाँ मन चले भारतवासी ठोकरें खानेके लिए अवश्य आया करते हैं। एक नव-युवक अग्रवाल ग्रेजुएट डिप्टी कलेक्टर (शायद हमीं लोगोंकी तरह जाँच करते हुए!) एक मित्रके साथ इन्हीं गोरी वेश्याओंमेंसे एकके यहाँ पहुँच गये। एक तुच्छ बात पर मतभेद होनेसे उस अभिमानिनी वेश्याने डिप्टी साहब पर गुस्सेसे हाथ चला दिया। डिप्टी साहब अपने मुँहसे कहते थे कि दोनों मित्र यदि जूता हाथमें ले दौड़ कर भाग न जाते, तो खूब ही पिटते, और पुलिसके हवाले कर दिये जाते ऊपरसे!

वे कहने लगे—"इस दुर्घटनासे मेरे मित्र, जिनका मैं मेहमान था बहुत दुःखी हुए। अपनी और मेरी झेप मिटानेके लिए मुझसे कुछ न कह कर वे मुझे एक मनोहर बेल, लता और पुष्पोंसे सुशोभित सुन्दर बंगलेमें ले गये। यह सुनकर कि यह एक वेश्याका बंगला है, मैं धक्कसे रह गया। डरा कि कदाचित् यहाँ भी न ठुक जायँ, पर यहाँका बर्ताव देशी वेश्याओंसे भी अच्छा ठहरा! यह एक यहूदिन वेश्याका बंगला था। ऐसे बहुत से बंगले कलकत्तेमें हैं। मैं १५ दिन तक कलकत्तेमें रहा और अकसर शामको किसी ऐसे ही बंगलेमें आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करता रहा।"—गिनते जाइए, यह सभ्यताका चौथा नमूना है!

एडेन गार्डन।

मैं—(चौंक कर) क्यों जी, यह अनोखी विक्टोरिया सब्जा पेयर तो मोती बाबूकी है न?

मेरे मित्र—(मुसकराकर) खूब, गाड़ी और जोड़ी तो पहचान गये, पर उसके मालिक सवारों पर आँख नहीं ठहरती।

मैं—अरे! यह तो स्वयं मोती बाबू हैं, पर उनके बगलमें यह कौन है?

मेरे मित्र—उन्हींकी घरवाली।

मैं—अजी जाओ भी, क्या मैंने उनकी बीबीको नहीं देखा है! यह तो रंग ढंगसे कोई वेश्या मालूम पड़ती है; लेकिन...।

मित्र—वेश्या बीबी नहीं तो और क्या है? लेकिनके बाद चुप क्यों हो गये? तुम्हें आश्चर्य है कि मोती बाबू गौहरजानके साथ बैठ कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हवा खाने निकले हैं। अरे यह कलकत्ता है। वह देखो, जौहरी जी मलकाको लिये उड़े जा रहे हैं।

मैं—और सामने बच्चा किसका बैठा है?

मित्र—जौहरी महाशयका। अभीसे सीखेगा नहीं तो आगे बापका नाम कैसे रक्खेगा!

मैं—छिः! क्या बेहयाई है, कैसी बेशरमी है।

मित्र—बस, तुम तो गँवार ही रहे। कैसी बेशरमी? वह देखो गाड़ियोंकी तीसरी कतार—एक, दो, तीन (कोई २० तक गिनाकर) जानते हो उनमें कौन हैं? पहचानते हो? सबकी सब वेश्यायें हैं। वे देखो सुशील बाबू उसे गुलदस्ता दे रहे हैं। डाक्टर बाबू फूलोंका बटन उसकी साड़ीमें लगा रहे हैं। जरा आँख खोल कर देखो—प्रमथ बाबू किसके गलेमें हाथ दिये घूम रहे हैं? यहाँ दिन भर लोग कस कर काम करते हैं, शामको यदि थोड़ा दिलबहलाव न करें तो मर ही जायँ। रहीं घरकी स्त्रियाँ; सो अव्वल तो उनसे यदि आजादीसे बातचीत करें, तो माँ-बाप तानोंसे बेध डालें, और दूसरे उन्हें अपनी गृहस्थी और बालबच्चोंके रोने-धोनेसे कहाँ फुरसत है, जो दिनभरके थके माँदे पतिका दिल बहलाकर उनकी थकावट दूर करें। तुम विलायतमें तो रहते नहीं कि हम भारतवासियोंके गृहसौख्यका हाल न जानते हो। हम लोगोंका घर तो नरककुंड समझो। यह सभ्यता और बेशरमी नहीं; कलकत्तेमें इसकी परम आवश्यकता है।

थियेटर।

यहाँ भी वही बात। आरचेड्राकी कोच पर दो सीटें हुआ करती हैं। प्रायः सभी कोचों पर बाईजी (वेश्यायें) और सेठजी साथ साथ बैठे हैं। किसी भी अमीरजादेकी बगल इन शरीफजादियोंसे खाली नजर नहीं आती। तमाशा खतम होने पर सेठ साहूकार तो अपनी अपनी चिड़ियोंके साथ हवागाड़ियों पर हवा हो गये, रहे किरायेकी गाड़ी करनेवाले; सो जिसे देखिए वही गाड़ीवालेसे किसी 'जान' के मकानका किराया तै कर रहा है। यदि मण्डलीका कोई आदमी घर जानेका नाम लेता है तो दूसरे उसे समझा बुझा कर ठीक कर लेते हैं। कहते हैं कि अरे यार, यह गोल्डेन नाईट (शनिश्चरकी रात) बड़ी मुशकिलोंसे सात दिनकी कड़ी मेहनतके बाद प्राप्त होती है, इसे घरकी बेहंगम स्त्री और कलहमें नहीं खोनी चाहिए।

ग्रीन पार्टी।

रविवारको अकसर दोपहरके बाद लोग शहरके बाहर बागबगीचोंमें, दस दस पाँच पाँचकी गोल बाँध कर निकल जाते हैं। कहीं ग्रीन सिरप (भंग) उड़ता है और कहीं हाट वाटर पेग पर पेग चढ़ाया जाता है। हर पार्टीमें पार्टीकी जान, एकाद वेश्या अवश्य रहती है।

यह रिपोर्ट हम लोगोंके भ्रमण करनेकी है। अब सरकारी कागजोंसे देखिए कि इस शहरकी क्या दशा है।

सन् १९११ की मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टसे ज्ञात होता है कि कलकत्ते शहरमें १४,२७१ (चौदह हजार!!) वेश्यायें हैं। कलकत्तेकी कुल स्त्रियोंमेंसे जिनकी उमर २० से ४० वर्षकी है, प्रत्येक बारह स्त्री पीछे एक वेश्या है! १२ से २० तककी आयुकी स्त्रियोंमें प्रति सैकड़ा ६ वेश्यायें हैं! और १०९६ वेश्या-लड़कियोंकी आयु १० वर्षसे भी कम है! ९० फी सदी वेश्यायें हिन्दू हैं!

भगवन्! बारह, दस या इससे भी कम आयुकी वेश्यायें! भारतमें जैसे बाल-विवाहकी कुरीति चल निकली है वैसे ही बाल-वेश्याओंका भी बुरा रिवाज जारी हो गया है। इस अन्धेरके विषयमें डाक्टर एस. सी. मैकेंजी एक स्थान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर और खाँबहादुर मौलवी तमीजखाँ दूसरे स्थान पर लिखते हैं कि—"बेचारी दीन लड़कियाँ पानीमें फूलनेवाली लकड़ीके साथ पानीके टबमें बैठाली जाती हैं जिससे कि वे पुरुषोंके समागमके लिए तैयार हो जायँ। कहीं कहीं यह काम केलेसे लिया जाता है।"

Dr. Chevers 'Means are commonly employed even by *parents* to render the immature girl *ople Viris* by mechanical means'—बस, यहाँ तो सभ्यताका अन्त हो गया!

सन् १८५२ ईसवीमें कलकत्तेमें १२,४१९ वेश्यायें थीं और उनमेंसे १०,४६१ हिन्दू थीं। सन् १८७० ई० में इस शहरमें ७,९३९ हिन्दू, १,१६२ मुसलमान, ५६ यूरेशियन, ५ यूरोपियन और ३५ यहूदिन आदि वेश्यायें थीं।

यह दशा केवल कलकत्ता शहरकी ही नहीं है। इस खुले व्यभिचारका साइनबोर्ड भारतके प्रत्येक शहरके खास बाजार या चौकमें दिखाई देगा। बम्बईका व्हाइट मारकेट (सफेद गली), लाहौरकी अनार कली, दिल्लीका चावड़ी बाजार, और लखनऊका खास चौक वेश्याओंसे भरा पड़ा है। तीर्थराज, पापनाशक, पवित्र काशीनगरमें, संयुक्त प्रान्तके सब शहरोंसे अधिक वेश्याओंकी संख्या है। डाक्टर और वैद्य भी यहाँ युक्तप्रान्तके सारे शहरोंसे अधिक हैं। (वेश्याओंकी अधिकताके साथ डाक्टरोंकी ज्यादती होनी ही चाहिए।) प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन और हरद्वार तक इनका डेरा जमा रहता है। पवित्र भूमि 'कनखल' में भी आप इन्हें देख लीजिए। नैनीताल आदि पहाड़ोंके ऊपर लोग कुछ ही महीनोंके लिए जाते हैं। बाबू साहबोंके साथ साथ बाईजीयों (वेश्याओं) का डेरा भी बदाऊँ, मुरादाबाद क्या बरेली तकसे वहाँ पहुँच जाता है। अँगरेज तो शामके वक्त बोटिंग करते हैं, नीचे क्लबमें फुटबाल आदि अनेक खेल खेलते हैं और बाबूसाहबान किसी प्रेमिकाके सड़े डेरेमें अपने स्वास्थ्यका सर्वनाश करते हैं। पहाड़से लौटे हुए एक अँगरेज और हिन्दुस्तानीका स्वास्थ्य उनके आचारकी गवाही देने लगता है!

भारतके कुल शहरोंकी वेश्याओंकी संख्या—जो मर्दुमशुमारीके समय अपना यही पेशा बताती हैं—४,७२,९९६ है। बहुतेरी वेश्यायें डरसे अथवा लाजसे अपना पेशा कुछ और बता देती हैं, इसलिए उनकी संख्या इसमें शामिल नहीं है। इन पौने पाँच लाखके लगभग वेश्याओंकी वार्षिक आमदनी ६२,४६,००,००० (बासठ करोड़!) रुपया है।

शोक यह है कि इस प्रकारका खुला व्यभिचार भारतमें दिनों दिन कम होनेके बदले बढ़ता जाता है, और वेश्याओंकी संख्यामें अधिकता होती जाती है। पञ्जाबकी हिन्दू सभा लिखती है कि "इस प्रान्तके प्रत्येक मुख्य मुख्य शहरमें व्यभिचारके लिए लड़कियोंकी खरीद और फरोख्त बढ़ रही है। सन् १९११ में प्रान्तीय लाट महोदयने, इस बातकी तसदीक की है।"

अस्पतालोंके रजिस्टर, दवा बेचनेवालोंके इश्तिहार और कोढ़ियोंकी संख्यासे भी इस देशके व्यभिचारकी झलक मालूम पड़ती है। कोढ़का रोग चाहे पैतृक भी हो, पर इस रोगके पीछे सिफ़लिस (गर्मी) अवश्य हुआ करती है। प्रोफेसर हिगिन बाटम—जिन्होंने कोढ़ियोंमें बहुत काम किया है—कहते हैं कि आजतक उन्हें कोई कोढ़ी ऐसा न मिला—जिसे खुद अथवा जिसकी छूतसे उसे यह रोग हुआ—सिफ़लिस न निकल चुकी हो। कोढ़की जड़ गर्मी है। यह तो खुले हुए व्यभिचारकी कथा हुई। इससे तो कोई इनकार ही नहीं कर सकता। अब रहा गुप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याभिचार, सो उसका जाँचना मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है। ईश्वर ही उसकी सच्ची जाँच कर सकता है।

इस देशमें समाजका ऐसा कड़ा नियम है, इसके लिए ऐसी कड़ी सामाजिक सजायें रक्खी गई हैं कि ऐसे लोगोंका प्रत्यक्ष पता लगाना कठिन ही नहीं, असम्भव है। पर अनुभव अवश्य किया जा सकता है।

पहले घरकी मजदूरिनोंको ले लीजिए। ये विवाहिता तो अवश्य होती हैं, पर युवावस्थामें अपने मालिकके घर, किसी न किसी नवयुवक सरदारकी शिकार होनेसे शायद ही बचती हैं। हाँ अवस्था ढल जाने पर चुपचाप अपने पतिके साथ पतिव्रता बन कर बैठ रहती हैं। सेन्ससके सुपरिन्टेन्डन्टने लिखा है कि,—"मजदूरिनोंमेंसे बहुत सी तो सचमुच ही वेश्यायें हैं।"

इसी तरह दूकानों पर बैठनेवाली स्त्रियोंको अर्ध वेश्या समझना चाहिए; कमसे कम कुचरित्र स्त्रियोंमें तो इनकी गिनती अवश्य होनी चाहिए।

दक्षिणभारत (मद्रास आदि) में बालिकाओंको मंदिरमें देवसेवा निमित्त चढ़ा देनेकी चाल है। वहाँ उन्हें 'विभूतिन' कहते हैं। वे तीर्थयात्रा करती हुई, इस प्रान्त तक आ जाती हैं और अपनी सच्चरित्रिताका परिचय दे जाती हैं।

उन विवाहित पुरुषोंकी स्त्रियाँ—जो अत्यन्त निर्बल हैं, रोगी हैं, वृद्ध या शक्तिहीन हैं, और जिन्होंने जान बूझ कर व्याह करके स्त्रियोंके गले पर छुरियाँ चलाई हैं—कबतक पातिव्रत धर्म निबाह सकती हैं? अथवा उन अनाचारी अत्याचारियोंकी स्त्रियाँ, जो अपना घर छोड़ कर बाजारकी हवा खाते हैं, कबतक और कहाँ तक निरादरता सहती हुई पतिव्रता रहेंगी? जो पुरुष स्त्रीभक्त नहीं, वेश्यागामी है, उसे अपनी स्त्रीसे पतिव्रता रहनेकी आशा करना व्यर्थ है। सम्भव है कि उसे अपने घरका हाल कभी न मालूम हो; पर बगलका पड़ोसी उसका कच्चा चिट्ठा कह सकता है।

सबके ऊपर भारतमें २ करोड़ ६४ लाखसे अधिक विधवायें हैं। मैं इनके आचरण पर आक्षेप नहीं करता। पर विचार करनेकी बात है कि इनमेंसे प्रायः सभी मूर्खा हैं, देव, शास्त्र, धर्म और ज्ञानसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। केवल यह जानती हैं कि उनके कुलमें विधवाविवाह नहीं होता। उन्हींका हृदय प्रश्न करता है कि क्यों नहीं होता? इसका वे कुछ उत्तर नहीं दे सकतीं। केवल भाग्यमें लिखा है, कर्म फूट गया है, आदि कह कह कर मनकी तरंगोंको शान्त करती हैं। पर इन स्त्रियोंकी शैतान पण्डों, पुरोहितों या ऐसे ही अन्य पाखण्डियोंसे भेंट हो जाने पर, और मौका मिलने पर, भाग्यके बलसे ये कबतक कामदेवसे लड़ सकती हैं? आखिर तो मूर्खा स्त्री ही ठहरीं न, उनकी कमजोरी उन्हें यह समझा कर सन्तोष कर लेनेके लिए लाचार कर देती है कि—"यह दुराचार भी विधाताने उनके भाग्यमें लिख रक्खा हो। गावे स्वयं धर्म्मच्युत नहीं हो रही हैं, बल्कि यह उनके दुर्भाग्यका परिणाम है—जिस दुर्भाग्यने, उन्हें जर्जर पतिकी पत्नी बनाया, और उसे भी न रहने दिया, वही भाग्य पिशाच उन्हें आज इस गढ़ेमें झोंक रहा है। चलो, यह भी सही 'विधिका लिखा को मेटनहारा'—" बस खतम। हाँ, यह बहुत जरूरी बात अवश्य है कि कहीं बात खुल न जाय, नहीं तो जन्म जन्मान्तर, पुश्त दरपुश्तके लिए खानदान भरको जातिच्युत होना पड़ेगा। सो, इसके लिए जबतक तीर्थयात्राके लिए द्रव्य, पापोंको धोनेवाली बड़ी बड़ी नदियाँ, घरकी पुरानी चालकी संडासें, या अन्धे कुएँ मौजूद हैं, इससे भी भय नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवन्! क्या ही दीन दशा है। विश्वबन्धुके मकानके पास ही एक कुलीन ब्राह्मण महाशयका घर था। उनके यहाँ एक परम रूपवती युवती विधवा थी। उनके घर परदेका कड़ा नियम था। तो भी विश्वबन्धु उनके यहाँ बेरोकटोक जाया करते थे। कुछ दिनोंके बाद जब न जाने क्यों ब्राह्मण महाशयने मकान छोड़ देनेका निश्चय किया, तब विश्वबन्धुने अपनी माँसे कह सुन कर उस मकानको खरिदवा लिया। ब्राह्मण महाशय सपरिवार अपने देश (कन्नौज) चले गये और उस मकानकी मरम्मत शुरू हुई। एक कोठरी, जिसे पण्डिताइन ठाकुरजीकी कोठरी कहा करती थीं, और जो सालमें केवल कुलदेवकी पूजाके समय खोली जाती थी, बड़ी सड़ी नम और बदबूदार थी। उसे पक्की करा देना निश्चय हुआ। नम मिट्टीको खोद कर फेंक देनेके लिए मजदूर खोदने लगे। सुना जाता है कि उसमेंसे एक ही उमरके कई बच्चोंके पंजर निकले! एक तो बिलकुल हालहीका दफनाया जान पड़ता था! प्रभो! भारतको ऐसे भयंकर पापोंसे बचाइए। हमें बल और निर्मल बुद्धि प्रदान कीजिए, जिससे हम इन कुरीतियोंका अन्त कर सकें।

सिविल सर्जन साहब जेल और अस्पताल आदिसे लौटकर लगभग एक बजे बंगले पर आये। टेबुलपर एक तार मिला, जिसका आशय यह था कि "रोगी सख्त बीमार है। जल्दी आनेकी कृपा कीजिए। देवदत्त।" साहब बड़े ही दयालु हैं। उसी समय घोड़े पर सवार होकर रवाना हो गये। उन्होंने देवदत्तके घर पहुँच कर पूछा कि रोगी कहाँ है? देवदत्त हाँफते हाँफते आये और बोले हुजूर, बड़ी गलती हुई, माफ कीजिए। साहबने डपटकर पूछा कि बतलाओ रोगी कहाँ है। देवदत्त गिड़गिडाते हुए साहबके हाथमें फीस रखकर पैरों पर लोट गये और ए-बारशनकी (गर्भपात करनेकी) दवा पूछने लगे। साहब लाल हो गये। जमीन पर जोरसे पैर पटककर और 'छिः' कहकर लौट गये। बंगले पर पहुँचकर उन्होंने इस बातकी सूचना पुलिस कप्तानके पास भेज दी।

उसी दिन रातको देवदत्तकी चचेरी बहिन अकस्मात् मर गई और रातोंरात चिता पर भस्म कर दी गई। यह विधवा थी। कई दिनके बाद देवदत्तकी तलबी कोतवालीमें हुई। सुना जाता है कि वहाँके देवताने अपनी पूजा पाई और रिपोर्टमें लिख दिया कि देवदत्त प्रतिष्ठित रईस हैं। उस दिन, उनकी बहिनको हैजा हो गया था, इसीलिए साहबको बुलाया था। वे एबारशन नहीं बल्कि रेस्ट्रिक्टिव चेक (restrictive hecke) की या बन्धेजकी दवा पूछना चाहते थे, और यह कानूनन कोई जुर्म नहीं है।

यह दोहरे खूनका नमूना है। यहाँ तो समाजमें जबतक बात छिपी है, तबतक सब ठीक, और यदि खुलनेकी नौबत आई तो बस 'विष' या 'त्याग'। ले जाकर कहीं दूरके शहरमें या तीर्थस्थानमें छोड़ आये। कुछ दिनों तक मुहब्बतके मारे कुछ खर्च भेजा और फिर बन्द कर दिया। ऐसी अनाथा स्त्रियोंकी क्या दशा होती होगी उसे पाठक स्वयं विचार सकते हैं।

भारतकी ऊपर बतलाई हुई कई लाख वेश्यायें कौन हैं? हम भारतवासियोंके घरकी विधवायें, हमारी ही बहिनें और बेटियाँ, या उनकी सन्तति। हमारी ही असावधानी, निर्दयता और निष्ठुरताके कारण उनकी यह दशा हुई है।

१ रामकली, विन्ध्याचल—"मैं क्षत्रानी हूँ। बालविधवा हूँ। मेरे भाई दर्शन करानेके हीलेसे मुझे यहाँ छोड़ गये। उनके इस तरह त्याग करदेनेका कारण मैं समझ गई, इस लिए मैंने कभी पत्र नहीं भेजा और न लौटनेकी चेष्टा की। अब भीख माँगकर अपना गुजर करती हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैं सर्वथा असहाय हूँ। और कोई जरिया पेट पालनेका नहीं है। उमर २०-२१ वर्षकी है। यहाँ मुझसी ही अभागिनें ८-९ स्त्रियाँ और हैं। उनका चरित्र ठीक नहीं है।

२ लछमी, वृन्दावन-" मैं ब्राह्मणी हूँ। मेरी सास आदि कई स्त्रियाँ मुझे यहाँ छोड़कर चल दीं। पत्र भेजने पर उत्तर मिला कि अपना कर्तव्य स्मरण करो, यहाँ लौटकर क्या मुँह दिखाओगी, वहीं जमुनामें डूब मरो। मेरी माँ नहीं है। पिताने मेरे पत्रका कभी उत्तर नहीं दिया।"

३ श्यामा, हरद्वार-" मेरे पिता मुझे यहाँ छोड़ गये हैं।"

४ राजदुलारी, गया- " मेरे ससुरालके लोग बड़े धनी हैं। यहाँ मुझे पुरोहितजी छोड़ गये हैं। कुछ दिनों तक पाँच रुपया मासिक आता रहा, पर अब कोई खबर नहीं लेता। पत्रोत्तर भी नहीं आता।"

५ नलिनी और सरोजिनी, काशी-"हम दोनों अभागिनें बंगालकी रहनेवाली हैं। हम दोनोंका एक ही घरमें विवाह हुआ था। नलिनी विधवा हो गई। मेरे पति मुझे एक लड़की होने पर वैराग्य लेकर चल दिये। मेरे ससुरजी पन्द्रह रु० मासिक पेन्शन पाते थे। काशीवास करने यहाँ आये और हम दोनोंको साथ लेते आये। तीन महीनेके बाद मर गये। एक परिचित बंगाली महाशय सहायता देनेके बहानेसे मिले और एक दिन हम दोनोंका कुल जेवर चुरा ले गये। फिर इसीसे लगी हुई पुलिसकी एक घटनासे बलपूर्वक हम अनाथाओंका सर्वनाश किया गया और इस दीन हीन दशाको पहुँचाई गई। एक सौ और बीस रुपया कर्ज होगया है। इस पुत्रीके सयानी होने पर इसीको बेचकर, अथवा वेश्या बना कर कर्ज अदा करूँगी।"

क्या अन्धेर है! स्त्रियों पर कैसा अत्याचार किया जा रहा है! स्त्रियाँ चाहे कितनी ही गई गुजरी क्यों न हों, पर बिना बेईमान शैतान पुरुषोंके बहकाये वे अपने धर्मसे कभी नहीं डिगतीं। स्त्रियोंका चरित्र बिगाड़ना पुरुष जातिका काम है। बाज हरामजादोंने तो सैकड़ों स्त्रियोंकी मिट्टी पलीद कर दी है। यह ठीक है कि ताली दोनों हाथसे बजती है; पर समाज केवल स्त्रियोंको ही क्यों दण्ड देता है? अनाथा स्त्रियाँ ही क्यों घरसे निकाली जाती हैं? कुचरित्र पुरुष जिनका व्यभिचार स्त्रियोंके मुकाबले सौ पचास गुना अधिक होता है क्या सजा पाते हैं? इन पापोंकी जड़, पाखण्डी कुचाली पुरुषोंका, समाज क्यों नहीं तिरस्कार करता? ऐसा न करना इन पापियोंको स्त्रियोंका सर्वनाश करनेके लिए सहारा देना और अनाथ, असहाय अबलाओं पर घोर अत्याचार करना है।

हमारा समाज, जिसे हम मूर्खतावश अति उत्तम समझ बैठे हैं और जिसकी पवित्रता पर फूले नहीं समाते, बिलकुल निर्जीव, निर्बल और सर्वदा अशिक्षित मनुष्योंका समूह है। इस समाजको सच्चरित्र स्त्रियोंकी आह और कुचरित्र स्त्रियोंका पाप भस्मीभूत कर रहा है और यदि इस पर लोगोंने ध्यान न दिया तो यह आह कुछ ही कालमें समाजको जलाकर राख कर देगी—सावधान! *

* हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर सीरीजमें शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले 'देशदर्शन' नामक ग्रन्थका एक अध्याय।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदिपुराणका अवलोकन।

[ले०—श्रीयुत बाबू सूरजभानजी वकील ।]

२

वेश्याओंका सत्कार।

आदिपुराणका अध्ययन करनेसे मालूम होता है कि पहले—कमसे कम ग्रन्थकर्ताके समयमें—वेश्याओंका आजकलके समान निरादर नहीं था। उस समय उनके साथ जैसा व्यवहार किया जाता है, वह आज कलकी दृष्टिसे एक प्रकारका प्रतिष्ठाका व्यवहार था। नीचे लिखे उदाहरणोंसे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

आदिनाथ भगवान्का जीव जिस समय विदेहमें—उस विदेहमें जहाँ कि सदैव चौथा काल रहता है—राजा महाबल था, उस समय उस पर अनेक वेश्यायें चँवर ढोरा करती थीं:—

सिंहासने तमासीनं तदानीं खचराधिपं ।
दुधुवुश्चामरैर्वारनार्यः क्षीरोदपाण्डुरैः ॥ २ ॥
मदनद्रुममञ्जर्यो लावण्यांभोधिवीचयः ।
सौन्दर्यकलिका रेजुस्तरुण्यस्तत्समीपगाः ॥ ३ ॥
—पर्व ५।

अर्थात् सिंहासन पर विराजमान हुए उस विद्याधरनरेश महाबल पर वेश्या स्त्रियाँ क्षीरजलके समान उजले चमर ढोरती थीं। उसके समीप वे तरुणी स्त्रियाँ कामदेवरूप वृक्षकी कोंपलों, लावण्यरूप समुद्रकी तरंगों और सौन्दर्यकी कलियोंके समान जान पड़ती थीं।

इसी प्रकारका वर्णन आदिनाथके जीव राजा वज्रनाभके सम्बन्धमें भी किया गया है:—

नृपासनस्थमेनं च वीजयन्ति स्म चामरैः ।
गंगातरंगसच्छायैर्भंगिभिर्ललिताङ्गनाः ॥ ४० ॥
—पर्व ११।

अर्थात् सिंहासन पर बैठे हुए उस राजा पर सुन्दर स्त्रियाँ गंगाकी लहरोंके समान उजले और कुछ कुछ तिरछे होकर ऊपर नीचेकी ओर जाते हुए चँवर डुला रही थीं।

पर्व २६ में भरतचक्रवर्ती जब दिग्विजयको निकले हैं उस समय उन पर भी वेश्याओंके चँवर डुर रहे थे।

स्वर्धुनीकरस्पर्द्धिचामराणां कदम्बकं ।
दुधुवुर्वारनार्योऽस्य दिक्कन्या इव संसृताः ॥ ६५ ॥

अर्थात् जब वेश्यायें उस चक्रवर्ती पर गंगाके जलकणोंकी समानता करनेवाले चँवरोंको ढोरती थीं, तब ऐसा मालूम होता था कि दिक्कन्यायें ही उतर आई हैं।

भरे दरबारमें सिंहासन पर बैठे हुए राजाओंके ऊपर वेश्याओंके द्वारा चँवर डुराये जानेके दृष्टान्त ही इस ग्रन्थमें नहीं मिलते हैं; किन्तु ऐसा किये जानेकी आज्ञा भी स्पष्टरूपसे दी गई है। श्रावकोंकी ५३ क्रियाओंमें एक 'साम्राज्य' नामकी भी क्रिया है। इस क्रियाका स्वरूप ३८ वें पर्वमें इस प्रकार लिखा हुआ है:—

चक्राभिषेक इत्येकः समाख्यातः क्रियाविधिः ।
तदनन्तरमस्य स्यात् साम्राज्याख्यं क्रियान्तरं२५३
अपरे युर्दिनारंभे धृतपुण्यप्रसाधनः ।
मध्ये महानृपसभं नृपासीनमधिष्ठितः ॥ २५४ ॥
दीप्तैः प्रकीर्णकव्रातैः स्वर्धुनीसीकरोज्ज्वलैः ।
वारनारीकराधूतैर्वीज्यमानः समन्ततः ॥ ३५५ ॥

भावार्थ—चक्राभिषेक क्रियाके अनन्तर 'साम्राज्य' नामकी क्रिया होती है। दूसरे दिन प्रातःकाल पवित्र अलंकार धारण करनेवाले महाराज, बड़े बड़े राजाओंकी सभाओंके बीचमें सिंहासन पर विराजमान हों और वेश्यायें उनके ऊपर गंगाके जलकणोंके समान उज्ज्वल चँवर डुलावें।

वेश्याओंका नृत्य भी उससमय बुरा नहीं समझा जाता था। वह उत्सवोंका बहुत ही प्रिय और आवश्यक साधन था। विदेह क्षेत्रमें राजा वज्रजंघ (आदिनाथका जीव) और श्रीमतीके विवाहमें वेश्याओंका नृत्य हुआ था:—

वर्द्धमानलयैर्नृत्यमारेभे ललितं तदा ।
वाराङ्गनाभिरुद्भूमीरणन्नूपुरमेखलम् ॥ २४४ ॥
—पर्व ७।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् इसके बाद वेश्याओं या गणिकाओंने बढ़ती हुई लयोंके साथ सुन्दर नृत्य करना आरंभ किया। उस समय उनके पैरोंके नूपुर और करधनीके घुँघरू बजते थे।

इसी प्रकार जब आदिनाथ भगवान्का राज्याभिषेक हुआ उस समय राजमहलमें वेश्यायें गा रही थीं और देवांगनायें नाच रही थीं:—

तदानन्दमहाभेर्यः प्रणेदुर्नृपमन्दिरे।
मंगलानि जगुर्वारनार्यो नेटुः सुराङ्गनाः॥ १९७॥
—पर्व १६।

भगवान् आदिनाथके राज्याभिषेकके समय वेश्याओंका नृत्य होना वेश्यानृत्य करानेकी आज्ञाके ही समान समझा जाना चाहिए। आगे जब भगवान्को वैराग्य हुआ और उनके पुत्रोंका राज्याभिषेक हुआ, उस समय भी यह परम आवश्यक कार्य किया गया—

एकतोऽप्सरसां नृत्यमस्पृष्टधरणीतलं।
सलीलपदविन्यासमन्यतो वारयोषिताम्॥ ८६॥
—पर्व १७।

अर्थात् एक ओर तो अप्सराओंका जमीनको न छूनेवाला (अधर) नृत्य हो रहा था और दूसरी ओर वेश्याओंका नृत्य होता था, जिसमें वे बड़ी सुन्दरतासे पैर रखती थीं।

वेश्याओंको साथ रखना और उनसे हँसी मजाक करना भी उस समय बुरा नहीं समझा जाता था। और तो क्या युद्धके समय भी वेश्यायें आवश्यक समझी जाती थीं। जब भरत महाराज अपनी दिग्विजययात्रामें वरतनु नामक समुद्रस्थ देवताको जीतकर अपने डेरेपर आये, तब कहा है कि:—

तत्रोद्घोषितमंगलैर्जयजयेत्यानन्दतो बन्दिभि-
र्गत्वान्तःशिबिरं नृपालयमहाद्वारं समासादयन्।
अन्तर्वैशिक लोकवारवनितादत्ताक्षताशासनः,
प्राविक्षन्निजकेतनं विधिपतिर्वातोल्लसत्केतनम्॥
—पर्व २८।

अर्थात् वहाँ पर 'जय जय' ऐसे मंगल शब्द करनेवाले वन्दीजनोंके साथ महाराज भरत शिबिर या छावनीके भीतर जाकर राजभवनके महाद्वारपर पहुँचे। वहाँ अन्तःपुरके रक्षकोंने और वेश्याओंने उन्हें मंगलाक्षत और आशीर्वाद दिये। इसके बाद वे अपने भवनके भीतर पहुँचे जिसके ऊपर ध्वजायें फहरा रही थीं।

आगे पर्व २९ के नीचे लिखे श्लोक पढ़नेसे मालूम होता है कि ये वेश्यायें दिग्विजय यात्रामें भरतमहाराजके लश्करके साथ साथ चलती रही हैं:—

वित्रस्तैरपथमुपाहृतस्तुरंगैः
पर्यस्तो रथ इह भग्नधूर्निरक्षः।
एतास्ता द्रुतमुपयांत्यपेत्य मार्गाद्-
वारस्त्रीवहनपराश्च वेगसर्यः।
वित्रस्तः करभनिरीक्षणाद्गजोऽयं
भीरुत्वं प्रकटयति प्रधावमानः।
उत्त्रस्यात्पतति च वेसरादमुष्माद्-
विस्रस्तस्तनजघनांशुका पुरंध्री॥

अर्थात् घोड़ोंने (हाथियोंसे) डरकर इस रथको कुमार्गमें ले जाकर पटक दिया है, इसका धुरा जुआ आदि टूट गया है और वेश्याओंको ले जानेवाली ये खच्चरियाँ अपना मार्ग छोड़कर बहुत शीघ्र दौड़ी जा रही हैं। यह हाथी भी ऊँटको देखकर डर गया है और भागता हुआ अपना डरपोंकपना प्रकट कर रहा है। इधर इस अतिशय डरी हुई खच्चरीपरसे यह स्त्री नीचे गिर गई है और इस कारण उसके स्तनों और जघनोंपरका कपड़ा खिसक गया है।

४२ वें पर्वमें ग्रन्थकर्ताने महाराज भरतकी दिनचर्याका विस्तारसे वर्णन किया है। वहाँ भोजनके पश्चात् दो पहरका कुछ समय वे किस तरह व्यतीत करते थे, इसके विषयमें लिखा है:—

तत्र वारविलासिन्यो नृपवल्लभिकाश्च तं।
परिवव्रुरुपारूढतारुण्यमदकर्कशाः। १३१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तासामालापसंलापपरिहासकथादिभिः ।
सुखासिकमसौ भेजे भोगांगैश्च मुहूर्तकम् ॥ १३२

अर्थात् उस समय जवानीके मदसे उन्मत्त हुई वेश्यायें और राजवल्लभायें उनके चारों ओर आकर बैठ जाती थीं। उनके आलाप-संलाप, हँसी, मजाककी बातोंके द्वारा वे (महाराज भरत) घड़ी भर सुखसे निवास करते थे।

इससे मालूम होता है कि, उस समय वेश्यायें राजाओंकी एक आवश्यक सामग्री थीं और उनके साथ हँसी खुशीमें घड़ी-दो घड़ी व्यतीत करना वे अपना एक नित्य-कर्म समझते थे।

आगे पर्व ४५ के कुछ श्लोकोंसे यह भी मालूम होता है कि, उस समय वेश्यायें भेटमें या तोहफेमें भी दी जाती थीं। देखिए:—

हेमांगदं ससोदर्यमुपचर्य ससंभ्रमं ।
पुरो भूय स्वयं सर्वैर्भोग्यैः प्राघूर्णकोचितैः ॥१८२॥
नृत्यगीतसुखालापैर्वारणारोहणादिभिः ।
वनवापीसरःक्रीडाकन्दुकादिविनोदनैः ॥ १८३ ॥
अहानि स्थापयित्वैवं सुखेन कतिचित्कृती ।
तदीप्सितगजाश्वास्त्रगणिकाभूषणादिकं ॥ १८३ ॥
प्रदाय परिवारं च तोषयित्वा यथोचितं ।
चतुर्विधेन कोशेन तत्पुरीं तमजीगमत् ॥ १८५ ॥

इनका भावार्थ यह है कि, जयकुमारने अपने साले हेमांगद और उसके भाइयोंका सब प्रकारके भोगोपभोगोंसे, नाच तमाशोंसे, हाथी घोड़े आदिकी सवारियोंसे, सरोवर आदिकी सैरों और तरह तरहके खेलोंसे सत्कार किया और जब वे जाने लगे तब उन्हें उनके दिलपसन्द हाथी, घोड़े, अस्त्र, वेश्यायें, और आभूषण आदि पदार्थ भेट किये।

अभीतक जो कुछ कहा गया, उससे यह मालूम होता है कि, चौथे कालमें वेश्याओंका पूरा पूरा आदर सत्कार था। राजदरबारोंमें वे राजाओंके मस्तकों पर चँवर ढोरती थीं; राज्याभिषेक आदि उत्सवोंमें उनका नृत्य कराया जाता था, युद्धके समय वे सेनाके साथ चलती थीं और राजाओंके डेरों पर उनके रणवासोंके पास ही रहती थीं, जीत आदिके खुशीके मौकों पर मंगल अक्षत और आशीर्वाद देनेका महान् काम उन्हें ही सोंपा जाता था, दो पहरको राजालोग उनके साथ हँसी-मजाक करते थे और वे भेटके तौर पर भी दूसरोंको दी जाती थीं। अब प्रश्न यह है कि जब वेश्यायें ऐसे आदरकी सामग्री हैं, तब आजकल जैनसमाजके नेता, उपदेशक, व्याख्याता, पत्र-सम्पादक आदि इनके नृत्यादि बन्द करानेके लिए क्यों जमीन असमान एक कर रहे हैं? जब आदिपुराण जैसे मान्य ग्रन्थमें 'साम्राज्य' क्रिया ऐसी महान् क्रियामें वेश्याओंद्वारा चँवर ढुरानेकी स्पष्ट आज्ञा है, तब विवाहादि उत्सवोंमे वेश्यानृत्य करानेका निषेध क्यों किया जा रहा है?

हमारी समझमें वेश्याओंके सम्बधका उक्त वर्णन ग्रन्थकर्त्ताकी निजकी कल्पना है। काव्यके सौन्दर्यको बढ़ानेकी दृष्टिसे और अपने समयके राजाओंमें वेश्याओंकी विशेष प्रतिपत्ति देखनेसे ही उन्होंने इस प्रकारका वर्णन करना उचित समझा होगा। उनके समयमें वेश्यायें इस दृष्टिसे नहीं देखी जाती होंगी, जिससे कि आजकल देखी जाती हैं।

३

मद्यपान।

जिस समय आदिनाथ भगवान् छह महीनेका उपवास ग्रहण करके ध्यानस्थ हुए, उस समय नमि और विनमि नामके राजकुआरोंने आकर उनसे प्रार्थना करना शुरू की कि आपने जिस-प्रकार अपने पुत्रोंको राज्य दिया है उसी प्रकार हमको भी दीजिए। इस पर धरणेन्द्रने आकर उन्हें समझाया और उन दोनोंको विजयार्ध पर्वत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर ले जाकर वहाँका राज्य दे दिया और इस तरह उन्हें सन्तुष्ट कर दिया। राज्य देनेसे पहले धरणेन्द्रने यहाँ निवास करनेवाली विद्याधरियोंके रूपादिका वर्णन किया था, जिसको आदिपुराणके कर्ताने बहुत विस्तारके साथ लिखा है। इस प्रसङ्गका एक श्लोक देखिए:—

नेत्रैर्मधुमदाताम्रैरिन्दीवरदलायतैः।
मदनस्येव जैत्रास्त्रैः सालसापाङ्गवीक्षितैः+॥१९१॥
—पर्व ८।

अर्थात् उनके नेत्र शराबके नशेसे कुछ कुछ लाल हो रहे थे, कमलपत्रोंके समान विशाल थे, आलसके साथ कटाक्ष फेंकते थे और ऐसे जान पड़ते थे मानों कामदेवके विजयी शस्त्र हों।

इस श्लोकमें नेत्रोंको 'मधुमदाताम्र' विशेषण दिया है, जिसका अर्थ होता है, शराबके नशेसे लाल हुए नेत्र। मालूम नहीं, कर्मभूमिकी आदिमें उन विद्याधरियोंको यह शराब कहाँसे मिलती थी, कौन इसे बनाता था, उन्होंने किससे इसका बनाना सीखा था और क्यों वे इसका पीना अनुचित नहीं समझती थीं।

आगे चलकर एक स्थानमें धणेन्द्र उन राजकुमारोंसे कहता है:—

इह मृणालनियोजितबन्धनैरिह्वतंससरोरुहताडनैः।
इह मुखासवसेचनकैः प्रियान्विमुखयन्तिरतेः कुपिताः
स्त्रियः॥ —पर्व १९।

अर्थात् कुपित हुई स्त्रियोंमेंसे कोई कोई कमलनाल तन्तुओंके बन्धनोंसे, कोई कोई सिरमें पहने हुए कमलोंकी चोटोंसे और कोई कोई अपने मुँहमें भरी हुई शराबके कुरलोंसे अपने अपने पतियोंको रतिक्रीडासे हटा रही हैं।

इस श्लोकमें मादिराके वास्ते आसव शब्द आया है।

+ इस श्लोकका अन्वय आगेके अनेक श्लोकोंके साथ है। इसी कारण इसमें 'क्रिया' नहीं है।

भरतमहाराज जब दिग्विजय करते हुए दक्षिणकी ओर गये, तब वहाँ उनकी सेनाके विषयमें लिखा है:—

निपपे नालिकेराणां तरुणानां स्रुतो रसः।
सरस्तीरतरुच्छायाविश्रान्तैरस्य सैनिकैः॥ १४॥
—पर्व ३०।

अर्थात् सरोवरके किनारे लगे हुए वृक्षोंकी छायामें आराम करनेवाले सैनिकोंने नारियलके तरुण वृक्षोंसे बहते हुए रसको पीया।

नारियलके वृक्षोंका रस एक प्रकारकी शराब ही है। इस बातकी पुष्टि इसी पर्वके नीचे लिखे श्लोकसे होती है:—

नालिकेरासवैर्मत्ताः किञ्चिदाघूर्णितेक्षणाः।
यशोऽस्य जगुरामन्द्रकुहरं सिंहलांगनाः॥ २५॥

अर्थात् सिंहलद्वीपकी तरुण स्त्रियाँ—जो नारियलकी शराब पीकर उन्मत्त हो रही थीं और इस कारण जिनके नेत्र कुछ कुछ घूम रहे थे, भरतका यशोगान कर रही थीं।

भरतकी सेनाके लोग क्षत्रिय वर्णके थे, जो उस समयका सबसे उत्तम वर्ण गिना जाता था। मालूम नहीं उन्होंने इस उन्मादक रसका पीना क्यों स्वीकार किया और सिंहलद्वीपकी स्त्रियाँ कौन थीं जो शराब पीकर उन्मत्त हो जाया करती थीं।

जब भरतमहाराजका दूत बाहुबलिकी राजधानीमें यह सन्देशा लेकर पहुँचा कि या तो अधीनता स्वीकार कर लो, या युद्धके वास्ते तैयार हो जाओ, तब ग्रन्थकर्ताने वहाँकी स्त्रियोंकी रात्रिक्रीडा आदिका वर्णन करते हुए लिखा है:—

नास्वादि मदिरा स्वैरं नाजघ्रे न करेऽर्पिता।
केवलं मदनावेशात्तरुण्यो भेजुरुत्कता॥ १८७॥
उत्संगसंगिनी भर्तुः काचिन्मदविघूर्णिता।
कामिनी मोहनास्त्रेण बतानंगेन तर्जिता॥ १८८॥
—पर्व ३५।

अर्थात् वहाँकी जवान स्त्रियाँ शराबको इच्छापूर्वक पिये विना, सूँघे विना और हाथमें लिये विना ही केवल कामदेवके आवेशसे उन्मत्त हो गई थीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने पतिकी गोदमें बैठी हुई और मस्तीसे घूमती हुई कोई कामवती स्त्री कामदेवके मोहन अस्त्रसे घायल हो रही थी।

१८७ वें श्लोकका यह वाक्य कि वे स्त्रियाँ शराबके पीये विना ही उन्मत हो गई थीं यदि भारतवर्षकी आजकलकी भले घरोंकी स्त्रियोंके लिए कहा जाय, तो मेरी समझमें बहुत ही अनुचित और असभ्यताका सूचक समझा जाय। हाँ, यदि यूरोपकी मेमोंके वास्ते ऐसा कहा जाय, तो शायद बुरा न समझा जाय। क्योंकि उनमेंसे कोई कोई शराब पीती हैं और उनके पुरुष तो अवश्य ही पीते हैं। यह विचार करके बड़ा आश्चर्य होता है कि आदिपुराणके कर्त्ताने सतयुगके प्रारंभकी आर्यस्त्रियोंके लिए ऐसा कथन क्यों कर दिया।

अच्छा अब जरा आगे और भी चलिए।

मधौ मधुमदारक्तलोचनामास्खलद्गतिम्।
बहु मेने प्रियः कान्तां मूर्तामिव मदश्रियम्॥११९॥
—पर्व ३७।

अर्थात् भरत महाराज वसन्त ऋतुमें अपनी उस पटरानीको—जिसके नेत्र मदिराके मदसे लाल हो रहे थे और जिसकी चाल डगमगा रही थी—मूर्तमान मदकी शोभाके समान बहुत मानते थे—बहुत ही प्यार करते थे।

इस श्लोकमें 'मधुमद' शब्द आया है जिसका अर्थ 'शराबका नशा' होता है। आँखोंका लाल होना और चालका डगमगाना ये दो बातें इस शराबके पीनेको और भी स्पष्ट कर देती हैं। परन्तु भरत महाराजकी पटरानीके विषयमें इस प्रकारकी कल्पना करनेको भी जी नहीं चाहता है। कहीं ग्रन्थकर्त्ताने ऐसी बातें अपने कवित्वका उत्कर्ष दिखालनेके लिए ही तो नहीं लिख दी हैं?

आगे जयकुमार और अर्ककीर्ति (भरतपुत्र) के युद्धके समय पर्व ४४ में ग्रन्थकर्त्ताने फिर रात्रिक्रीड़ाका वर्णन किया है:—

खण्डनादेव कान्तानां ज्वलितो मदनानलः।
जाज्वलीत्ययमेतेनेत्यत्यजन्मधु काश्चन॥ २८८॥
वृथाभिमानविध्वंसी नापरं मधुना विना।
कलहान्तरिताः काश्चित्सखीभिरिति पायिताः॥२८९॥
प्रेम नः कृत्रिमः नैतत्किमनेनेति काश्चन।
दूरादेव त्यजन् स्निग्धाः श्राविकेवासवादिकं॥ २९०॥
मधु द्विगुणितं स्वादु पीतं कान्तकरार्पितं।
कान्ताभिः कामदुर्वारमातङ्गमदवर्द्धनम्॥ २९१॥

अर्थात्—कामकी आग तो जली थी, पतिके वियोगसे; परन्तु उस वियोगिनीने शराबका पीना छोड़ दिया, उसने समझा कि यह आग इस शराबसे ही प्रज्वलित हुई है। कितनी ही कलहान्तरिता स्त्रियोंको—जिन्होंने पतिके साथ कलह की थी और इस कारण जिनके पति चले गये थे—उनकी सखियोंने खूब शराब पिला दी; कारण व्यर्थके अभिमानको नष्ट करनेके लिए शराबसे अच्छी कोई चीज नहीं है। जब हमारा प्रेम बनावटी नहीं है, तब हमें शराब पीनेकी क्या आवश्यकता है, इस खयालसे बहुतही स्त्रियोंने शराबको श्राविकाओंके समान, दूरहीसे छोड़ दिया था। कितनी ही स्त्रियाँ दुर्निवार कामरूपी हाथीके मदको बढ़ानेवाले और अपने पतिके हाथसे दिये हुए स्वादिष्ट मद्यको दूना पी गई थीं।

इन श्लोकोंमेंसे पहले, दूसरे और चौथे श्लोकमें शराबके लिए 'मधु' शब्द आया है और तीसरे श्लोकमें 'आसव' शब्द आया है। इससे इनके पूर्वमें आये हुए श्लोकोंके मधु और आसव आदि शब्दोंका अर्थ और भी अच्छी तरहसे स्पष्ट हो जाता है। यह सन्देह नहीं रहता कि, इनके कुछ और ही अर्थ होंगे।

२९० नम्बरके श्लोकसे यह मालूम होता है कि जिन स्त्रियोंके सम्बन्धमें यह कथन किया गया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है वे श्राविकायें नहीं थीं; परन्तु जब ये सब बातें तीर्थंकर भगवान्‌की दिव्य ध्वनिके अनुसार लिखी गई हैं, तब प्रश्न यह है कि तीर्थंकर भगवान्‌को क्या आवश्यकता थी कि वे उस नगरकी स्त्रियोंके गुप्तसम्भोगादिका खुल्लमखुल्ला वर्णन करते? दूसरा प्रश्न यह है कि वे स्त्रियाँ कौन थीं? —आर्या या म्लेच्छा? यदि आर्या थीं तो किस वर्णकी थीं और उनके वर्णमें क्या यह शराब पीनेकी रीति प्रचालित थी अथवा अपने वर्णके प्रतिकूल ही वे ये सब क्रियायें कर रही थीं? तीसरा प्रश्न यह है कि, जब उस समय आदिनाथ भगवान्‌के समवसरणमें उनकी दिव्यध्वनि संसारके जीवोंको सूर्यके समान सन्मार्ग दिखला रही थी, तब स्त्रियोंमें इस तरहकी बढ़ी चढ़ी शराबखोरी कहाँसे आ घुसी? चौथा प्रश्न यह है कि उस कर्मभूमिके प्रारंभिक कालमें ही क्या लोग शराब बनाना और उसका पीना सीख गये थे?

मद्यपानलीलाके इन और इन्हींके सामान अन्य प्रकरणोंमें इस बातकी ओर विशेष लक्ष्य जाता है कि—यह मद्यपान जहाँ तहाँ स्त्रियोंको ही कराया गया है, पुरुषोंको नहीं। एकाध प्रसंगको छोड़कर (जैसे कि भरतकी सेनाके सिपाहियोंका नारियलका रस पीना) पुरुष इस व्यसनसे बरी ही रक्खे गये हैं। पर्व ४६ में एक दरिद्रीकी कथा लिखी गई है। दरिद्रीने मुनि महाराजके उपदेशसे आठ प्रकारके पापोंका त्याग कर दिया था। यह त्याग उसके पिताको पसन्द नहीं आया, इस लिए वह अपने लड़केको मुनि महाराजके पास उक्त त्यागको वापस करनेके लिए लेकर चला। मार्गमें उसे आठों पापोंके अपराधी घोर दण्ड पाते हुए मिले, जिनमें मदिरा पीनेका अपराध करनेवाली एक स्त्री ही थी। (देखो श्लोक २८१-८२।)

हमारी समझमें सतयुगमें या चौथे कालके प्रारंभमें स्त्रियोंका इस प्रकार मद्यपायी होना विश्वासके योग्य नहीं। या तो ग्रन्थकर्त्ताने अपने समयकी सर्व साधारण जनोंकी प्रवृत्तिके अनुसार ये सब बातें लिखी हैं, या काव्यों महाकाव्योंके नियमोंकी पालना करनेके लिए उन्हें यह सब वर्णन करना पड़ा है। काव्यों और महाकाव्योंमें कितने कितने सर्ग रहने चाहिए और उन सर्गोंमें किन किन विषयोंका वर्णन रहना चाहिए, संस्कृत साहित्यमें इस प्रकारके अनेक नियम निर्धारित हैं। पीछे पीछे ये नियम कवियोंके लिए प्रायः अनुल्लंघनीय बन गये थे, ऐसा जान पड़ता है। यही कारण है जो पिछले महाकाव्योंमें रात्रिक्रीड़ा वर्णन और मधुपान वर्णनके कमसे कम एक एक सर्ग अवश्य रचे गये हैं। जान पड़ता है, अन्य कवियोंके समान जैन कवियोंने भी इन नियमोंको सिर झुकाकर मान लिया था। यही कारण है जो चन्द्रप्रभ और धर्मशर्माभ्युदय आदि जैनकाव्योंमें भी इस विषयके एक एक दो दो सर्ग मौजूद हैं। आदिपुराणको भी इसके कर्त्ताने एक महाकाव्यके रूपमें रचा है और इसी कारण इसकी रचनामें उन्हें संस्कृत काव्योंके नियमोंको मानकर चलना पड़ा है। उन्होंने संस्कृत कवियोंके इस नियमको भी माना है कि सुन्दर स्त्रियोंके पैरोंके लगनेसे, उनके पैरोंके घुँघरुओंके शब्दसे, और उनके मुखकी मदिराके कुरलोंसे बहुतसे वृक्ष फूल उठते हैं।

योषितां मदगण्डूषैर्नूपुरारावरंजितैः।
कुर्वन् वामाङ्घ्रिभिश्चालमांघ्रिपानपि कामुकान्। २७३।
—पर्व ४३।

इसके सिवाय जब शृंगाररसका वर्णन करना ग्रन्थकर्ताको अभीष्ट था, तब यह संभव नहीं कि वह ऐसी बातोंको न लिखता। क्योंकि स्त्रियोंकी उन्मत्तता और मदविह्वलताको प्रकट किये विना शृंगाररसका चरम उत्कर्ष नहीं दिखलाया जा सकता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गरज यह कि कविशिरोमणि जिनसेनाचार्यने इस नियमके वशवर्ती होकर कि काव्यमें मधुपानका वर्णन रहना चाहिए और यह खयाल करके कि स्त्रियोंकी शोभा और सुन्दरताका मधुपानसे विशेष सम्बन्ध है, अपने ग्रन्थमें चौथे कालकी आदिकी स्त्रियोंको भी मद्य पीनेवाली वर्णन किया है, ऐसा जान पड़ता है।

यदि वास्तवमें ऐसा ही है, तो ये कविताके ग्रन्थ बड़ी सावधानीसे पढ़े जाने चाहिए। इनके प्रत्येक शब्दको जिनवाणी समझ लिया जायगा तो सत्यश्रद्धानमें बाधा आनेकी बड़ी भारी संभावना है। और यदि ऐसा नहीं है तो मदिरा पीनेका उक्त कथन क्या अर्थ रखता है, इसके साफ तौर तौरपर खुल जानेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। विद्वानोंको इस ओर ध्यान देना चाहिए। (क्रमशः)

नोट—लेखक महाशयने जो यह लिखा है कि उस समय वेश्यायें इतनी बुरी दृष्टिसे नहीं देखी जाती थीं, जितनी कि आजकल देखी जाती हैं, सो इसकी पुष्टि हमारे श्रावकाचारोंके ग्रन्थोंसे होती है। सबसे पहले आचार्य सोमदेवके यशस्तिलकका यह श्लोक देखिए:—

वधूवित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्र तज्जने।
माताश्वसा तनूजेति मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे॥

अर्थात् अपनी स्त्री और वित्तस्त्री (वेश्या) को छोड़कर अन्य सब स्त्रियोंको माता, बहिन और पुत्रीके समान समझना, यह गृहस्थाश्रमका ब्रह्मचर्य है। इससे मालूम होता है कि, सोमदेवके मतसे वेश्याका सम्बन्ध रखने पर भी जो गृहस्थ पराई स्त्रियोंका त्यागी है, वह एक प्रकारका ब्रह्मचारी है।

इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धि और राजवार्तिक आदि ग्रन्थोंमें वेश्यासंभोगको स्वदारसन्तोषव्रतका अतीचार बतलाया है, अनाचार नहीं। रत्नकरण्डश्रावकाचारमें भी इत्वरिकागमन या वेश्यागमनको स्वदारसन्तोषव्रतका—जिसका दूसरा नाम परदारनिवृत्ति भी है—अतीचार बतलाया है। राजवार्तिककारने इत्वरिकाका लक्षण किया है—"ज्ञानावरणक्षयोपशमापादितकलागुणज्ञतया चारित्रमोहस्त्रीवेदोदयप्रकर्षादंगोपांगनामोदयावष्टंभाच्च परपुरुषानेति गच्छतीत्येवं शीला इत्वरी, ततः कुत्सायां कः, इत्वरिका।" अर्थात् ज्ञानावरणी कर्मके क्षयोपशमसे प्राप्त हुई नृत्य गान आदि कलाओंकी जानकारीसे, चारित्रमोह रूप स्त्रीवेद और अंगोपांग नामक नाम कर्मके उदयसे जो परपुरुषोंसे समागम करती है उसे इत्वरी कहते हैं। इसमें निन्दावाचक 'क' मिलकर 'इत्वरिका' शब्द बनता है। वेश्याकी गणना परस्त्रीमें नहीं हो सकती है, इसी कारण सप्त व्यसनोंमें 'परस्त्रीसेवनसे' 'वेश्यासेवन' व्यसन जुदा बतलाया गया है। यदि इन दोनों व्यसनोंमें कुछ तारतम्य न होता, तो ये जुदे जुदे नहीं बतलाये जाते।

उक्त सब प्रमाणोंसे हम यह नहीं सिद्ध कर रहे हैं कि वेश्यागमन पाप नहीं है; नहीं, पाप तो वह है ही; किन्तु परस्त्रीसेवनके बराबर नहीं है। और इसी कारण आचार्योंने उसे स्वदारसन्तोषियोंके लिए अनाचार नहीं, किन्तु अतीचार माना है।

अब रहा, वेश्याओंको घृणाकी और आदरकी दृष्टिसे देखना, सो इसका सम्बन्ध देशकालके अनुसार जनसाधारणके झुकाव पर है। संभव है श्रीजिनसेन स्वामीके समयमें उस प्रान्तमें जहाँ कि वे रहते थे वेश्यायें घृणित न समझी जाती रही हों। आज भी हम देखते हैं कि मालवा, मध्यप्रदेश और यू. पी. के कुछ जिलोंमें वेश्याका व्यसन जितना बुरा समझा जाता है, उतना बिहार और बंगालमें नहीं समझा जाता। कर्नाटक प्रान्तमें इस समय भी जिनेन्द्र भगवान्के अभिषेकके लिए जो जलयात्रोत्सव होता है, उसमें वेश्याओंका नृत्य कराया जाता है। वहाँ तो कहीं कहीं मन्दिरोंमें भी वेश्यानृत्य होता है; परन्तु हमारे यहाँ अब पुरुषोंका नृत्य भी समझदारोंकी आँखोंमें खटकने लगा है।—सम्पादक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रमालक्षण ।

श्वेताम्बर संप्रदायका सबसे पहला तर्कलक्षण ग्रंथ ।

(लेखक-श्रीयुत मुनि जिनविजयजी ।)

विक्रमकी ११ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें जिनेश्वर और बुद्धिसागर नामके दो प्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य हो गये हैं । ये दोनों सगे भाई और गुरुभ्राता थे । विद्वान् तो ये थे ही, साथ ही चरित्रवान् और प्रभावशाली भी थे । इन्होंने अपने समयमें बहुतसे यतियोंकी शिथिल प्रवृत्ति देखकर उसका तीव्र विरोध किया था और अपने उदाहरणके द्वारा लोगोंको शुद्धाचारकी शिक्षा दी थी । इनके समयमें श्वेताम्बर-साहित्यने विकासके एक नवीन मार्गमें प्रवेश किया । यदि श्वेताम्बर साहित्यके प्राचीन और अर्वाचीन इस प्रकार दो विभाग कल्पना कर लिये जायँ, तो ये दोनों बन्धु अर्वाचीन साहित्यके कर्णधार या आदि प्रवर्तक कहे जा सकते हैं । इनके पहलेका जो श्वेताम्बर साहित्य है, वह केवल आगम ग्रन्थोंके साथ ही संबंध रखनेवाला है । हरिभद्र, सिद्धसेन, सिद्धर्षि और अभयदेवके इने-गिने ग्रंथोंके सिवा और कोई भी प्रकीर्णक साहित्य इनसे पहलेका उपलब्ध नहीं हुआ । परंतु इन बन्धुओंके आविर्भावके बाद श्वेताम्बर साहित्यस्रोत सहस्रधाराओंसे बहने लगा और आगेकी ३-४ शताब्दियोंमें वर्षाकालीन जलकी तरह न्याय, व्याकरण, काव्य, अलंकार आदि सब ही क्षेत्रोंमें विपुलताके साथ व्याप्त हो गया । इन ३-४ शतकोंमेंसे प्रत्येक शतकमें शतशः ग्रंथ भिन्न भिन्न विषयोंके लिखे गये और वे जैन-साहित्यकी शोभाको चिरकालतक आश्चर्यान्वित दृष्टिसे देखने लायक बना गये । इन बन्धुओंके अवतारके पहले श्वेताम्बरोंके तर्क, शब्द और काव्य आदिके स्वनिर्मित लक्षण ग्रंथ नहीं थे । उस समयके विद्वान् ब्राह्मण और बौद्धोंके बनाये हुए न्याय, व्याकरण और अलंकारविषयक ग्रंथोंका अध्ययन करके ही पाण्डित्य प्राप्त करते थे और उन्हींके आधार पर वे अपने सिद्धान्तोंका मण्डन और विपक्षियोंका खण्डन किया करते थे । यद्यपि उस समय सिद्धसेन दिवाकर, मल्लवादी, हरिभद्र और अभयदेव आदि बड़े बड़े तार्किकोंके बनाये हुए न्यायावतार, नयचक्र, अनेकान्त जयपताका और वादमहार्णव (सम्मति-टीका) आदि अच्छे अच्छे प्रभावशाली तर्कग्रंथ मौजूद थे और वे ऐसे थे कि उनकी युक्तियोंके आगे परवादियोंको युक्तियाँ नहीं सूझती थीं; फिर भी प्रथमाभ्यासी जैनको न्यायशास्त्रके सिद्धान्तोंका प्राथमिक क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त करनेके लिए अजैन ग्रन्थोंहीकी शरण लेनी पड़ती थी और इसी कारण इस प्रकारके कितने ही अजैन ग्रंथों पर जैन विद्वानोंको टीका-टिप्पण लिखने पड़े थे । सुप्रसिद्ध बौद्ध तार्किक धर्मकीर्ति-रचित न्यायबिन्दुकी धर्मोत्तरवाली व्याख्या पर मल्लवादीका टिप्पण और दिङ्नागके न्यायप्रवेश-पर हरिभद्रकी टीका इस कथनके प्रकट प्रमाण हैं । जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागराचार्यको इस प्रकार परकीय साधनसंपत्ति पर अवलम्बित रहकर अपना उत्कर्ष बढ़ाना अच्छा नहीं मालूम हुआ, इस लिए उन्होंने इस बड़ी भारी न्यूनताको पूर्ण करनेका वर्णनीय प्रयत्न करके अपने साहित्यको समुन्नत करनेका सूत्रपात किया ।

श्वेताम्बर साहित्यका इतिहास देखनेसे पता लगता है, कि इन भ्राताओंके पूर्वके यतियोंका अधिकांश भाग तो धर्मशास्त्रोंके पठनपाठनके सिवाय और किसी प्रकारके ग्रन्थोंका परिचय भी नहीं रखता था । न्याय, व्याकरण, काव्य आदि लौकिकी विद्याओंका ज्ञाता तो उस समय कोई विरला ही होता था । यही कारण है कि विक्रमकी पहली दश शताब्दियोंमें—इतने बड़े हजार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्षके कालमें केवल पाँच ही सात श्वेताम्बर ग्रंथ-कर्ता उत्पन्न हुए हैं। जिस समय देश पर विदेशियोंके लगातार आक्रमण होते रहे और सर्वत्र अशांति फैली रही, उससमय भी जब श्वेताम्बर विद्वानोंने हजारों ग्रंथ लिख डाले, तब उस शांतिके समयमें इस बातका कैसे अभाव हो सकता था? उस समयके यतियों-मुनियोंमें लौकिक विद्याओंका अधिक प्रचार न होनेमें मुझे यह कारण प्रतीत होता है कि प्रारंभके शतकोंमें जो मुनि होते थे, वे बहुधा विशेष विरक्त और उदासीन होते थे। सिद्धसेन दिवाकर जैसे तेजस्वी और पराक्रमी क्वचित् ही प्रकट होते थे। जो आत्मस्वरूपावलोकनमें मग्न रहनेवाले हैं, वे तत्त्वचिंतनमें शिथिलता लानेवाले इन बखेड़ोंमें क्यों पड़ने लगे? वे तो परमात्म दशाका स्मरण और मनन करनेहीमें अधिकतर लगे रहते थे। उनको वही विषय प्रिय लगता था, जिसमें आत्मा परमात्माका शुद्धस्वरूप शांतिप्रदायक शब्दों और विचारोंमें प्रदर्शित किया गया हो। तर्कके कर्कश कटाक्षोंका, व्याकरणके अटपटे सूत्रों और शब्दप्रयोगोंका तथा शृंगारादि नाना रसोंसे चित्तकी निश्चलताको क्षुब्ध कर देनेवाले आलंकारिक भावोंका रटन करनेमें उन्हें रति प्राप्त हो, यह असंभव था। इस लिए उस समयके आत्मदर्शी श्रमण इस विषयकी प्रवृत्तिका बहुत कम सेवन कर सके। परन्तु पिछले शतकोंमें देशकी परिस्थिति बदल गई, धार्मिक विचारोंमें जडता आ गई, और वैमनस्यकी मात्रा बढ़ गई, इस कारण उस प्रकारकी उच्चदशावाली मुनिवृत्तिका तो लोप होता गया और उसके स्थानमें संयमशैथिल्य और प्रमादाचरणका प्रवेश हुआ। साधु लोग एक ही जगह बहुत समय तक निवास करने लगे, और चैत्यों-मंदिरोंकी व्यवस्था देखने-संभालने लगे और गृहस्थोंका संपर्क अधिक रखने लगे। इस प्रकार अनेक निषिद्धाचरणोंका सेवन करनेसे वे प्रमत्त हो गये। अपने अनुरक्त श्रावकोंको साधारण धर्मकथा सुना दे सकनेवाले ज्ञानके सिवा अधिक विद्याध्ययन करनेमें वे आलस्यवान् बन गये। ऐसी स्थितिमें साहित्यके विकसित होनेकी संभावना कहाँतक की जा सकती है? इसी समयमें कुछ बौद्धादि विधर्मियोंका भी उपद्रव अधिक रहा, जिससे जो इस कार्यके लिए समर्थ थे वे मुनि भी शांतिके अभावमें साहित्यका विकास विशेष नहीं कर सके।

पश्चिम भारतकी प्राचीन राजधानी वल्लभी नगरीके विध्वंसके साथ बौद्धोंका भी विस्तार संकुचित होने लगा। विक्रमकी ९ वीं शताब्दिके प्रारंभमें गुजरातके मध्यकालीन गौरवके केन्द्रभूत स्थान अणहिल्लपुरके राज्यतंत्रमें प्रारंभहीसे जैनोंका सर्वाधिक हस्तक्षेप रहा। अणहिल्लपुरका जो बड़ा भारी उत्कर्ष हुआ था, वह जैनजनताहीके कारण था, यह कहनेमें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है। यह बात इतिहाससिद्ध है। अणहिल्लपुरकी उन्नतिके साथ पश्चिम भारतमें प्रचलित रहनेवाले जैनधर्मकी उन्नतिका अभेद संबंध है। ज्यों ज्यों गुजरातका राज्य सुसंगठित होता गया और शक्तिमें बढ़ता गया, त्यों त्यों जैनसमाज भी पिछली कई शताब्दियोंकी जमी हुई जडताको दूर करता गया। साधुसमुदायमें जागृति आने लगी और धर्मप्रचारकी ओर उसका उत्साह बढ़ने लगा। यही समय जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागराचार्यके प्रादुर्भावका है। इसके पहले वादिवेताल शान्त्याचार्य, महेन्द्रसूरि, महाकवि धनपाल और उनके बन्धु शोभन मुनि आदि कई विद्वानोंके बुद्धिप्रभावने साधुसमूहमें जो विद्योन्नतिके बीज बो दिये थे, उन्हें इन दोनों बन्धुओंने जलसिञ्चन करके अंकुरित कर दिया। इन्होंने अपने विशाल शिष्यसमुदायमें केवल धर्म-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रोंके ही नहीं, न्याय, व्याकरण, काव्य, कोष, नाटक, छन्द, अलंकार आदि सभी विषयोंके अध्ययनके प्रचारको बढ़ाया।* इनका अनुकरण और और साधुमण्डलोंने भी उत्साहके साथ किया, जिसके कारण ३०-४० वर्षहीमें सैकड़ों प्रौढ पण्डित तैयार हो गये और उन्होंने अपने पाण्डित्यसे जैनधर्मको और उसके साहित्यको उत्तम रीतिसे विभूषित करना शुरू कर दिया। इन्होंने शिथिलाचारका बड़े जोरशोरसे निषेध करना प्रारंभ किया और अणाहिल्लपुरकी राजसभामें कई शिथिलाचारपोषक यतियोंके साथ वाद करके उनको निरुत्तर किया, जिससे यतिसमूहमें फिर शुद्धाचरणकी प्रवृत्ति बढ़ने लगी।

पहले कहा जा चुका है कि जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरिके पहले श्वेताम्बरोंके न्याय, व्याकरण आदिके लक्षणग्रंथ नहीं थे और यह न्यूनता उन्हें बहुत खटकी। इसकी पूर्ति करनेके लिए जिनेश्वरसूरिने एक उत्तम तर्कलक्षण ग्रंथ और बुद्धिसागराचार्यने एक सर्वांगपूर्ण शब्दलक्षणशास्त्र बनाया। तर्कलक्षण ग्रंथका नाम है-'प्रमालक्षण' और शब्दशास्त्रका नाम है-'बुद्धिसागर-व्याकरण'+। श्वेताम्बर संप्रदायके यही दोनों तर्क और शब्दविषयके सबसे पहले लक्षण ग्रंथ हैं। यद्यपि श्वेताम्बर साहित्यमें इस समय इनसे भी बड़े बड़े न्याय और व्याकरणके अनेक ग्रंथ मौजूद हैं और उनकी उत्तमता और अनुपमता अच्छे अच्छे अजैन विद्वानोंने भी प्रमाणित की है; परन्तु वे सब इनके पीछे बने हैं।

यह ग्रंथ सूत्रात्मक नहीं, किन्तु धर्मकीर्तिके न्यायवार्तिकके सदृश वार्तिकरूप है। महामति सिद्धसेन दिवाकरके प्रसिद्ध ग्रंथ न्यायावतारके

"प्रमाणं स्वपरावभासि,
ज्ञानं बाधविवर्जितम्।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च,
द्विधा मेयविनिश्चयात्॥"

इस आदि श्लोकको मूल मानकर इसीके व्याख्यानके रूपमें ४०५ कारिकायें बनाई गई हैं और फिर उनको अपनी ही बनाई हुई विस्तृत वृत्तिसे स्पष्ट और पल्लवित किया है। इस ग्रन्थमें प्रमाण और प्रमेयके साथ सम्बन्ध रखनेवाले सभी विषयोंके लक्षण बहुत अच्छी तरहसे प्रतिपादित किये गये हैं। दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, शान्तिरक्षित, कुमारिल आदि प्रख्यात नैयायिकोंके विचारोंकी भी जगह जगह आलोचना-प्रत्यालोचना की गई है। ग्रंथ रोचक और प्रतिपादक पद्धतिसे लिखा गया है। इसमें कहीं कहीं कोमल कटाक्षयुक्त वाक्योंका भी प्रयोग किया है; परंतु असभ्यताके साथ नहीं। एक उदाहरण लीजिए—

महान् मीमांसक कुमारिल भट्टने अपने श्लोकवार्तिकमें वेदोंकी आप्तता सिद्ध करते हुए मौजमें आकर एक जगह वेदोंको अनाप्त माननेवाले जैन और बौद्धोंके लिए लिखा है कि—

धारणाध्ययनव्याख्या-
नित्यकर्माभियोगिभिः।
मिथ्यात्वहेतुरज्ञातो
दूरस्थैर्ज्ञायते कथम्॥

---

* इस बातका उल्लेख जिनेश्वरसूरिके प्रशिष्य वर्द्धमानाचार्यने अपने बनाये हुए 'आदिनाथ चरियम्' नामक प्राकृत ग्रंथकी प्रशस्तिमें जो संवत् ११६० में पूर्ण हुआ है—किया है।

सूरिजिणेसर सिरि बुद्धिसागरा सागरो व्व गंभीरा।
सुर-गुरु-सुक्क-सरिच्छा सहोयरा तस्स दो सीसा॥
वायरण-च्छन्द-निघण्टु-कव्व-नाडय-पमाणसमयेसु।
अणिवारियप्पचारा जाणमइ सयलसत्थेसु॥

+ इसकी समाप्ति संवत् १०८० में, मारवाड़के धवलिपुर (जालोर) में हुई है। इसी वर्षमें जिनेश्वरसूरिने हरिभद्रके अष्टकसंग्रहकी भी टीका की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ये तु ब्रह्माद्विषः पापा
वेदाद्दूरं बहिष्कृताः ।
ते वेदगुणदोषोक्ति
कथं जल्पन्त्यलज्जिताः ॥

अर्थात्–जो ब्राह्मण निरंतर वेदोंका धारण, अध्ययन, व्याख्यान और पूजन आदि करते हैं वे तो उनका मिथ्यात्व अभीतक जान नहीं सके; तब जो ब्रह्मद्वेषी हैं, वेदधर्मसे बहिष्कृत हैं और वेदोंके पास तक नहीं जाते वे पापी (जैन और बौद्ध) लोग निर्लज्ज होकर वेदोंके गुण-दोषोंको कैसे कह सकते हैं ? भट्टजीके इन आवेश और आक्रोशयुक्त वचनोंका देखिए सूरिजीने संक्षेपमें, परंतु कैसे मीठे और मार्मिक शब्दोंमें जवाब दिया है ।

धारणाध्ययनेत्यादि नाक्रोशः फलवानिह ।
अज्ञैरज्ञाततत्त्वोऽपि पण्डितैरवसीयते ॥

अर्थात्–धारणाध्ययन इत्यादि श्लोकोंमें, 'ब्रह्माद्विषः' और 'पापा' आदि शब्दोंद्वारा भट्टजीने जो अपना आक्रोश प्रकट किया है वह निष्फल है–उससे कुछ फलकी प्राप्ति नहीं होती। जहाँपर युक्तायुक्तविषयक तात्त्विक विचार किया जाता हो वहाँपर आक्रोश करनेसे अपनेको या दूसरेको–किसीको भी तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती । और जो यह कहा कि तुमने वेदोंका अस्वीकार करनेवाले जैनोंने–वेदोंसे दूर रहनेवालोंने–वेदोंका मिथ्यात्व कैसे जान लिया, सो इसका तो उत्तर यह है कि, जो बात अज्ञ युक्तायुक्तविचारशून्य मनुष्य दीर्घकालके संसर्गसे भी नहीं जान सकते, उसे विद्वान् मनुष्य तत्काल जान लेता है ।

महर्षि गौतमने अपने न्यायसूत्रमें, परपक्षका निरसन करनेके लिए वादके सिवा जल्प, वितण्डा, छल, जातिप्रयोग आदि करनेकी भी अनुज्ञा दी है; परंतु जैन तार्किकोंने केवल एक वातहीका उत्तम माना है, जल्प और वितण्डाको हेय कहा है + । उन्होंने अपने ग्रंथोंमें साधनाभासोंका प्रयोग नहीं किया; केवल विपक्षियोंके साधनोंमें दूषण बताकर ही अपने सिद्धान्तोंका समर्थन किया है । यही बात प्रमालक्षणके अन्तमें इन दो कारिकाओंके द्वारा कही गई है—

प्रमाणवादिनां तस्माद्वाद एव विचारणा ।
साधनाभासमन्यैस्तु वादिभिरभियुज्यते ॥
तेनावधीरणाप्यत्र महता लक्ष्मशासने ।
परपक्षनिरासो हि साधनाभासतोऽप्यसौ ॥

पिछली कारिकाकी टीकामें यह भी सूचित किया गया है कि–प्रमाणके लक्षण प्रतिपादन करनेमें, प्रयासकी निष्फलता समझकर पूर्वके जैनाचार्योंने उस तरफ उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा है और इसी लिए हरिभद्रसूरिने अनेकान्तजयपताकामें और अभयदेवसूरिने सम्मति–टीकामें परपक्षका निरसन करने मात्रके उद्देशसे प्रयत्न किया है । मल्लवादिसरीखे महान् आचार्यने परपक्षका निर्मूलन करनेमें अद्वितीय शक्तिशाली होकर भी नयचक्रकी स्थापना सिद्ध करनेके सिवा प्रमाणके लक्षण कहनेका काम नहीं किया । क्योंकि उन्होंने यही ठीक समझा था कि, परपक्षका निरसन करनेहीसे स्वपक्षकी स्वतः सिद्धि हो सकती है । वह टीकाका पाठ यह है:—

—**" अत्र प्रमाणलक्षणे, निष्फलत्वादायासस्य । अत एव श्रीहरिभद्रसूरिपादैः श्रीमदभयदेवसूरिपादैश्च परपक्षनिरासे तैर्यतितमनेकान्तजयपताकायां तथा सम्मति-टीकायामिति । अत एव श्रीमन्महामल्लवादिपादैरपि नयचक्र एवादरो विहित इति न तैरपि प्रमाणलक्षणमाख्यातं परपक्ष-**

+ हेमचन्द्राचार्यने भी अपनी 'प्रमाणमीमांसा' में ऐसा करना अन्याय बताया है । लिखा है कि— अमदुत्तरैः परप्रतिक्षेपस्य कर्तुमयुक्तत्वात्, न ह्यनायेन जयं यशो धनं वा महात्मानः समीहन्ते । (पृष्ठ ३८)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्मथनसमर्थैरपि परपक्षनिरासादपि स्वपक्षस्य पारिशेष्यात्सिद्धिरिति ।"

पूर्वाचार्योंके द्वारा प्रमाणलक्षणके विषयमें इस प्रकार सार्थक उपेक्षाकी जाने पर भी जिनेश्वरजीने जो यह प्रयत्न किया है, उसका कारण इसके बादकी दो कारिकाओंमें इस प्रकार बतलाया गया है:—

तैरवधीरिते यत्तु प्रवृत्तिरावयोरिह ।
तत्र दुर्जनवाक्यानि प्रवृत्तेः सन्निबन्धनम् ॥१॥
शब्दलक्ष्मप्रमालक्ष्म यदेतेषां न विद्यते ।
नादिमन्तस्ततो ह्येते परलक्ष्मोपजीविनः ॥ २ ॥

टीका—शब्दलक्ष्मव्याकरणम्, श्वेतभिक्षूणां स्वीयं न विद्यते तथा प्रमालक्ष्मापि प्रमाणलक्षणमपि, येषां स्वीयं न विद्यते । नादिमन्तो नैवादावेव एते संभूताः, किन्तु कुतोऽपि निमित्तादर्वाचीना एते जाता । ततो ह्येते, तस्मादित्युपसंहारः । हिर्हेतुपदसूचकः । किम्भूतास्ते इत्याह—परलक्ष्मोपजीविनः बौद्धादिप्रणीतलक्षणमुपजीवितुं शीलाः, एतादिति हेतुपदम् । उक्तं च

छव्वास सएहिं णउत्तरेहिं
तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स ।
कंबलियाणं दिट्ठी
वलहीपुरिए समुप्पण्णा ॥

अर्थात् इस विषयकी ओर पूर्वाचार्योंद्वारा उपेक्षा किये जाने पर भी जो हम दोनोंकी प्रवृत्ति हुई है, सो इसमें दुर्जनोंके ये वाक्य कारण हैं कि इनके—श्वेताम्बरोंके—शब्दलक्षण (व्याकरण) और प्रमाणलक्षणविषयक स्वकीय ग्रन्थ नहीं हैं, ये परलक्षणोपजीवी—बौद्धादि ग्रन्थोंसे अपना निर्वाह करनेवाले हैं, अतः ये आदिसे नहीं हैं, किन्तु किसी निमित्तविशेषसे नये ही पैदा हो गये हैं । जैसा कि किसीने (दिगम्बर ग्रन्थकर्त्ताने) कहा भी है—महावीर भगवान्के निर्वाणके ६०९ वर्ष बाद वल्लभीपुरमें श्वेताम्बरदर्शन उत्पन्न हुआ । अतएव

श्रीबुद्धिसागराचार्यैर्वृत्तैर्व्याकरणं कृतम् ।
अस्माभिस्तु प्रमालक्ष्म वृद्धिमायातु साम्प्रतम् ॥

टीका—श्रीबुद्धिसागराचार्यैः पाणिनि-चन्द्र-जैनेन्द्र-विश्रान्त-दुर्गटीकामवलोक्य वृत्तबन्धैः—धातुसूत्रगणोणादिवृत्तबन्धैः कृतं व्याकरणं संस्कृत-प्राकृतशब्दसिद्धये । अस्माभिस्तु प्रमालक्ष्म प्रमाणलक्षणम्, अतएव पूर्वाचार्यगौरवदर्शनार्थं वार्तिकरूपेण तत्रापि स्वाभिप्रायनिवेदनार्थं वृत्तिकरणेन च ।

अर्थात् श्रीबुद्धिसागर आचार्यने तो पाणिनि, चन्द्र, जैनेन्द्र, विश्रान्त और दुर्गटीका आदि व्याकरण ग्रन्थोंका अवलोकन करके संस्कृत और प्राकृत शब्दोंकी सिद्धिके लिए व्याकरण ग्रन्थ बनाया और मैंने पूर्वाचार्योंका गौरव दिखानेके लिए वार्तिकरूपमें और स्वाभिप्राय प्रकट करनेके लिए अपनी वृत्तिसे भूषित करके यह प्रमालक्षण गन्थ बनाया है ।

प्रमालक्षणके बननेकी यह बात विशेष ध्यान खींचती है कि, उस पुराने जमानेमें जब जैनोंके—श्वेताम्बर जैनोंके—स्वकीय लक्षणिक ग्रंथ नहीं थे और दूसरोंके बनाये हुए ग्रन्थों पर वे अपने ज्ञानके विकासका आधार रखते थे, तब ब्राह्मणों और बौद्धोंके समान स्वयं उनके स्वयूथ्यों दिगम्बरोंकी ओरसे भी उनपर इस बातका आक्षेप हुआ करता था, कि "तुम्हारे स्वकीय लक्षणग्रंथ नहीं हैं, तुम परलक्ष्मोपजीवी हो, इस लिए तुम्हारा संप्रदाय, नया चला हुआ है । तुम्हारा मत प्राचीन नहीं है ।" उस समय दिगम्बर संप्रदायमें जैनेन्द्रादि व्याकरण और परीक्षामुखादि प्रमाणप्रतिपादक ग्रंथ बन चुके थे, इस लिए उनको अपने साहित्यका अभिमान रखनेका स्वाभाविक कारण उत्पन्न हो गया था और श्वेताम्बरोंमें ये बने नहीं थे, इस लिए उन पर कटाक्ष करनेका प्रसंग दिगम्बरोंको मिल रहा था । जिनेश्वरसूरि और उनके भ्राताको

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ये कटाक्ष असह्य मालूम दिये, इस लिए उन्होंने अपने संप्रदायके तद्विषयक साहित्य-स्थानको भी अशून्य बना देनेका यह काम कर दिखाया और अपने अर्वाचीनत्वको तिरोहित कर दिया ! परन्तु यह बात समझमें नहीं आती कि इस प्रकारके एक दो ग्रंथोंके बन जानेसे आक्षेपक लोग कैसे शान्त हो गये होंगे और श्वेताम्बरोंकी प्राचीनताका कैसे स्वीकार करने लग गये होंगे । इसके सिवाय यह बात भी विचारणीय है कि जो दिगम्बर लोग श्वेताम्बरों पर कटाक्ष करते थे वे, अपने साहित्यमें भी पूज्यपाद और माणिक्यनन्दि आदिके प्रादुर्भावके पहले इस प्रकारके ग्रंथोंका अभाव होने पर अपनी आदिमत्ता या प्राचीनताको कैसे प्रमाणित करते होंगे ?

कहा जाता है कि, हेमचंद्राचार्यको अपना सुप्रसिद्ध व्याकरण सिद्धहेमशब्दानुशासन भी इसी प्रकारका एक कारण उपस्थित होनेसे बनाना पड़ा था । प्रबन्धचिन्तामणिमें लिखा है, कि हेमचन्द्राचार्य सिद्धराज जयसिंहकी सभामें एकदिन किसी एक काव्य पर अपना अपूर्व अर्थचातुर्य प्रकट कर रहे थे । उसे सुनकर राजा बहुत खुश हुआ और उनके पाण्डित्यकी प्रशंसा करने लगा । एक ब्राह्मण विद्वान्को यह बात सहन न हुई । वह बोला—महाराज, इसमें इनकी क्या शोभा है ? हमारे ही व्याकरणादि शास्त्रोंके प्रभावसे ये इतनी विद्वत्ता प्राप्त कर सके हैं । राजाने आचार्यजीके सामने देखा, तब वे बोले कि, पहले हमने तुम्हारा नहीं, किन्तु वह व्याकरण पढ़ा है; जिसे महावीर जिनने अपनी बाल्यावस्थामें इन्द्रके सामने प्रकट किया था । ब्राह्मणने कहा—इन पौराणिक बातोंको छोड़ दीजिए और यदि कोई आधुनिक व्याकरणकर्ता आपमें हो तो हमें बतलाइए । हेमचंद्राचार्यने उत्तर दिया कि यदि महाराज सिद्धराज साहाय्य करें, तो मैं स्वयं ही महान् व्याकरण बनानेमें समर्थ हूँ । राजाने साहाय्य देना स्वीकार किया; जिससे एक वर्ष भरहीमें आचार्यजीने सवालक्ष श्लोक-प्रमाण सर्वांगपूर्ण सिद्धहेमशब्दानुशासन नामक व्याकरण बना दिया * ।

अस्तु । यदि ये दूसरोंके द्वारा किये जानेवाले कटाक्षोंकी बातें सच हों तो श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुयायियोंको कटाक्षकर्त्ताओंका उपकार ही मानना चाहिए, जिनके कारण उनके साहित्यका बहुत ही विकास हुआ और उससे समूचे भारतीय साहित्यकी शोभामें भी अपरिमित वृद्धि हुई । १२–९–१९१७ । बम्बई ।

नोट—प्रमालक्षणके कर्ता जिनेश्वरसूरि बड़े भारी तार्किक समझे जाते हैं, तब मालूम नहीं कि उनकी तर्कप्रवण बुद्धिमें यह बात कैसे जँच गई कि तर्कलक्षणग्रन्थ बना देनेसे श्वेताम्बरसम्प्रदाय परसे अर्वाचीनत्वका आरोप उठा दिया जायगा । एक तो इस बात पर विश्वास ही नहीं होता है कि किसी विचारशील विद्वानके द्वारा श्वेताम्बरसम्प्रदाय पर इस प्रकारके आक्षेप किये जाते होंगे । क्योंकि लक्षणग्रन्थोंका होना न होना प्राचीनता या अर्वाचीनताका हेतु नहीं हो सकता । दूसरे यदि साधारण लोगोंके द्वारा ऐसे आक्षेप किये

* अस्मिन् काव्ये निःप्रपञ्चे प्रपञ्चमाने तद्वचनचातुरीचमत्कृतचेता नृपस्तं प्रशंसन् कैश्चिदसहिष्णुभिरस्मच्छास्त्राध्ययनबलादेतेषां विद्वत्तेत्यभिहिते राज्ञा पृष्टाः श्रीहेमचन्द्राचार्याः । पुरा श्रीजिनेन श्रीमन्महावीरेणेन्द्रस्य पुरतः शैशवे यद्व्याख्यातं तज्जैनव्याकरणमधीयामहे वयमिति । तद्वाक्यानन्तरमिमां पुराणवार्तामपहायास्माकमेव सन्निहितं नृपं व्याकरणकर्तारं कमपि ब्रूतेति तत्पिशुनवाक्यादनु ते प्राहुः—यदि श्रीसिद्धराजः सहायीभवति तदा कतिपयैरेव दिनैः पञ्चाङ्गमपि नूतनं व्याकरणं रचयामः ।.....श्रीहेमाचार्यैः श्रीसिद्धहेमाभिधानं पञ्चाङ्गमपि व्याकरणं सपादलक्षग्रन्थप्रमाणं संवत्सरेण रचयां चक्रे । (प्रबन्धचिन्तामणिः, पृ० १४६–७.)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी जाते रहे हों, तो उनका निराकरण इन ग्रन्थोंके बन जानेसे हो गया होगा, यह बात नहीं मानी जा सकती । इनके बन जाने पर भी तो यह कहनेकी गुँजाइश बनी ही रही होगी कि इनके लक्षणग्रन्थ अभी हालहीके, अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दिके बने हुए हैं, अतएव इनका सम्प्रदाय प्राचीन नहीं, अर्वाचीन ही है । इन ग्रन्थोंके बन जानेसे केवल इस आक्षेपको अवश्य ही स्थान नहीं रहा होगा कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें शब्द और न्यायके लक्षणग्रन्थ नहीं हैं । इससे अधिक और किसी आक्षेपके निवारणकी आशा इनसे नहीं की जा सकती ।

'छव्वास सएहि' आदि गाथा किसी दिगम्बरी ग्रन्थपरसे उद्धृत की गई है, ऐसा जान पड़ता है; परन्तु उसमें यह हेतु देकर श्वेताम्बरदर्शनकी अर्वाचीनता सिद्ध नहीं की गई है कि श्वेताम्बरोंमें लक्षणग्रन्थ नहीं हैं, इस कारण वे अर्वाचीन हैं । यह तो परम्परासे चली आई केवल एक कथा है । इस तरह विचार करनेसे मालूम होता है कि ग्रन्थकर्त्ताने जो अपने ग्रन्थके रचे जानेका कारण बतलाया है, वह सर्वांशमें ठीक नहीं है । वास्तवमें इस कारणका इतना ही अंश ठीक जान पड़ता है कि ग्रन्थकर्ताको अपने यहाँकी यह कमी—लक्षणग्रन्थ नहीं हैं, यह त्रुटि—खटक गई, इससे उन्होंने अपने सम्प्रदायका अगौरव समझा और अन्तमें इस दिशामें प्रयत्न किया ।

श्रीजिनेश्वरसूरिके वाक्योंसे विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिके लगभगके और उसके आगेकी शताब्दियोंके जैनविद्वानोंके उन भावोंका आभास मिलता है जिनके वशवर्ती होकर उन्होंने सैकड़ों अनुकरणमूलक ग्रन्थोंकी रचना की है। व्याकरण, छन्द, काव्य, कोश, अलंकार आदि विषय ऐसे हैं कि इनसे किसी धर्मका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है; परन्तु वह समय ऐसा था, जैनों और जैनतरोंका पारस्परिक सम्बन्ध इतना विच्छिन्न हो रहा था, और असहिष्णुता इतनी बढ़ रही थी कि जैनोंको इन विषयोंके भी स्वतन्त्र ग्रन्थ रचनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई । उन्हें यह असह्य हो गया कि हमारे धर्मके अनुयायी दूसरोंके बनाये हुए ग्रन्थ पढ़ें । अपने यहाँ भी सब विषयोंके ग्रन्थ बनने चाहिए, यह भावना उनमें बराबर बढ़ती गई और इसने उन्हें जैनतरोंसे सर्वथा पृथक् कर दिया । हमारी समझमें जैनविद्वानोंका यह पृथक् पृथक् विषयों पर ग्रन्थ लिखनेका प्रयत्न यदि उक्त भावनाके वशवर्ती होकर नहीं, किन्तु समूचे भारतीय साहित्यको उन्नत बनानेकी दृष्टिसे होता तो बहुत अच्छा होता, उसकी कमनीयता और महनीयता कुछ और ही होती और वह केवल जैनोंके लिए ही नहीं, किन्तु जैनतरोंके लिए भी अभिमानकी वस्तु होती ।

—सम्पादक ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनजातियोंके पारस्परिक बेटी-व्यवहारमें हानिकी कल्पना।

कुछ समय पहले सूरतके 'दिगम्बर जैन' में श्रीयुत पण्डित पन्नालालजी बाकली-वालने एक छोटासा लेख प्रकाशित कराया था और उसमें यह प्रतिपादन किया था कि, जब एक जाति दूसरीसे सम्बन्ध करने लगेगी तब निर्धन जातिकी पुत्रियोंको दूसरी जातिके धनिक ब्याह ले जायँगे, वृद्धविवाहकी वृद्धि होगी और कंगालोंके लड़के अधिक अविवाहित रहेंगे। यह लेख पारस्परिक बेटी-व्यवहारके विरोधियोंको इतना पसन्द आया कि उन्होंने उसे कई पत्रोंमें उद्धृत करके प्रकाशित किया। इच्छा हुई कि उक्त लेखके विरुद्धमें हम भी कुछ लिखें, परन्तु उसके कुछ ही समय पहले जैनहितैषी भाग ११ पृष्ठ ६२८ में हमारा एक 'जैन जातियोंमें पारस्परिक विवाह' शीर्षक विस्तृत लेख प्रकाशित हो चुका था और उसमें उक्त लेखकी प्रायः सभी बातोंका उत्तर दिया जा चुका था, इस लिए हमने उस समय इस विषयमें मौन रहना ही उचित समझा; पर देखते हैं कि वह लेख हाईकोर्टकी 'नजीर' बन रहा है। जैनगजटके सम्पादकने ता. १७ सितम्बरके गजटमें उसे फिर पेश किया है, इस लिए आवश्यक हुआ कि उसकी भ्रामकता प्रकट कर दी जाय। पहले हम अपने पूर्वोल्लिखित लेखका ही वह अंश उद्धृत कर देते हैं, जिसमें इस विषयकी चर्चा की गई है:—

"यह शंका की जाती है कि पारस्परिक विवाहसम्बन्ध जारी होनेसे पहले पहल उन जातियोंको बहुत हानि उठानी पड़ेगी, जिनकी संख्या थोड़ी है और जो निर्धन हैं। क्योंकि उन धनिक जातियोंके लोग जिनमें कन्यायें कम हैं छोटी जातियों पर टूट पड़ेंगे और उनकी सारी कन्याओंको हथया लेंगे। इसका फल यह होगा कि छोटी जातियोंके लड़के कुँआरे रह जायँगे और निर्धन होनेके कारण अन्य जातिके लोग उन्हें कन्या देंगे नहीं। परन्तु वास्तवमें यह शंका निरर्थक है। कारण एक तो ऐसी जाति शायद ही कोई हो जिसमें निर्धन ही निर्धन हों, धनी कोई न हो। सभी जातियोंमें धनी और निर्धन पाये जाते हैं और जिन जातियोंमें धनी अधिक हैं, उनमें निर्धन भी बहुत हैं जो दूसरी जातिके निर्धनोंको अपनी लड़कियाँ खुशीसे देनेको तैयार हो जायँगे। तीसरे धनी प्रायः धनियोंके ही साथ सम्बन्ध करते हैं; गरीबोंके साथ तो उस समय करते हैं जब उनकी उम्र बहुत अधिक हो जाती है। सो ऐसे लोगोंको तो रुपयोंके जोरसे कहीं न कहीं लड़कियाँ मिल ही जायँगी; चाहे वे जातिमें मिलें या दूसरी जातियोंमें। यदि वे दूसरी जातिकी कन्यायें ले आयँगे तो उनकी जातिकी कन्यायें औरोंके लिए बची रहेंगी। बात यह है कि इस प्रश्नका विचार समग्र जैन समाजके हानिलाभ पर दृष्टि रखकर करना चाहिए। तमाम जैन जातियोंमें जितनी कन्यायें हैं, यदि उन सबका यथोचित सम्बन्ध हो जाय, किसीको कुँआरी न रहना पड़े और विवाहका क्षेत्र बढ़ जानेसे यह निस्सन्देह है कि लड़कियाँ कुँआरी न रहेंगी तो समझना होगा कि पारस्परिक विवाहसम्बन्ध लाभकारी है। यदि इससे किसी एक जातिको कुछ हानि भी हो और आरंभमें ऐसा होना कई अंशोंमें संभव भी है, तो सारे जैनसमाजके लाभके खयालसे उसको दर गुजर करना होगा।

कुछ लोगोंका यह खयाल है कि सब जातियोंमें बेटीव्यवहार होने लगनेसे कन्याविक्रय बढ़ जायगा। ऐसे लोग अपने विचारोंकी पुष्टिमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह युक्ति देते हैं कि, जो लोग अपनी लड़कियोंको बेचते हैं उनके लिए विक्रीका क्षेत्र बढ़ जायगा और इस कारण वे जिस जातिमें अधिक धन देनेवाले मिलेंगे उसी जातिमें अपना काम बनानेकी कोशिश करेंगे, परन्तु यह युक्ति इस प्रश्नके एक ही ओर दृष्टि डालकर की जाती है; यह नहीं सोचा जाता कि जब बेचनेवालेके लिए विक्रीका क्षेत्र बढ़ जाता है तब खरीददारोंके लिए भी तो खरीद करनेका क्षेत्र छोटा नहीं रहता है। जो रुपये देकर ब्याह करना चाहेंगे उनके लिए फिर लड़कियाँ भी तो बहुत मिलने लगेंगी; वे बेचनेवालोंके बढ़ते हुए लोभमें सहायक क्यों होंगे ?"

श्रीयुत पं० पन्नालालजीने अपने लेखमें मुरादाबाद जिलेके खण्डेलवालोंका एक दृष्टान्त दिया है जिसका सार यह है कि "उक्त जिलेके खण्डेवालोंके साथ देहली, अलीगढ़ आदिके खण्डेलवालोंका बेटीव्यवहार नहीं होता था। क्योंकि मुरादाबादवाले दो या तीन गोत टालकर ही सम्बन्ध कर लेते थे, पर देहली अलीगढ़वालोंमें चार गोत्र टालकर विवाह होते थे। कुछ लोगोंके प्रयत्नसे मुरादाबादवालोंने अपने यहाँ चार गोतोंका टालना स्वीकार कर लिया और तब उनका देहली आदिके लोगोंसे विवाहसम्बन्ध होने लगा। इसका फल यह हुआ कि, मुरादाबादके रईसोंकी जितनी लड़कियाँ थीं वे तो देहली अलीगढ़ आदिके रईसोंके यहाँ पहुँच गईं और इधरके निर्धनोंके लड़के कोरे रह गये। उनके पास इतना धन नहीं कि वे अलीगढ़ आदिसे लड़कियाँ ला सकें। बस, यही एक मात्र कारण है कि मुरादाबाद जिलेके लड़के कुँआरे रह जाते हैं।" हमारी समझमें यह दृष्टान्त तब तक प्रमाणके रूपमें ग्रहण नहीं किया जा सकता, जबतक वहाँके खंडेलवालोंकी संख्याके अंक उपस्थित करके यह न समझा दिया जाय कि कुँआरोंकी संख्यामें इतनी कमी हुई है। यह देखा जाय कि जिस समयकी बात कही गई है उस समय मुरादाबाद जिलेमें ब्याहे, कुँआरे और रँडुए पुरुषोंकी तथा ब्याही, कुँआरी और विधवा स्त्रियोंकी संख्या कितनी थी और उसके बाद पाँच दश वर्षमें उस संख्यामें कितना अन्तर पड़ गया। इसका हिसाब भी प्रकट किया जाय कि यह नया सम्बन्ध जारी होनेपर मुरादाबादकी कितनी लड़कियाँ बाहर गईं और बाहरसे कितनी वहाँ आईं। इस तरह पूरी जाँच किये बिना ऐसी बातों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। यह बहुत संभव है कि कुँआरोंकी संख्या और ही किन्हीं कारणोंसे बढ़ गई हो और समझ यह लिया गया हो कि इस नये सम्बन्धसे ऐसा हुआ है। एक तो ऐसा हो नहीं सकता कि मुरादाबादकी लड़कियाँ—बाहरवालोंने ले तो ली हों, पर दीं बिलकुल ही न हों। क्योंकि मुरादाबाद जिलेमें भी तो रईसों और धनियोंका अभाव नहीं है। उन्होंने जब बाहरके रईसोंको अपने लड़कियाँ दी होंगी तब ली भी तो होंगी। इसी प्रकार मुरादाबाद जिलेमें जिस प्रकार निर्धन लोग हैं, उसी प्रकार अलीगढ़ आदिमें भी उनका अभाव नहीं है। अलीगढ़ आदिवाले धनियोंने कुछ यह प्रतिज्ञा तो की ही न होगी कि हम मुरादाबादके ही गरीबोंकी लड़कियाँ लायेंगे, अपने आसपासके गरीबोंकी नहीं लेंगे; जिससे कि यह समझ लिया जाय कि मुरादाबादके गरीबोंकी सारी लड़कियाँ अलीगढ़ आदिमें चली गईं। और थोड़ी देरके लिए यदि यह भी मान लिया जाय कि मुरादाबाद जिलेमें कुँआरोंकी संख्या बढ़ गई, तो इसके साथ यह भी मानना पड़ेगा कि, अलीगढ़ आदिके खण्डेलवालोंमें कुँआरोंकी संख्या कम हो गई होगी। क्योंकि यह तो निश्चय है कि खण्डेलवाल जातिमें अधिक उम्रतक या जीवनभर कुमारी रहनेवाली लड़कियाँ नहीं हैं। अर्थात् लड़कियाँ तो मुरादाबाद और अलीगढ़

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदिकी ब्याही ही गई होंगी, और कुँआरोंकी संख्या भी उतनी ही होगी जितनी कि लड़कियोंकी कर्माके हिसाबसे रहनी चाहिए; अन्तर सिर्फ यह पड़ा होगा कि, अलीगढ़ आदिकी ओर जो अधिक कुँआरे रहते थे, सो उनके बदले यहाँ मुरादाबाद जिलेमें अधिक हो गये होंगे। अभिप्राय यह कि समग्र खण्डेलवाल जातिके लाभकी दृष्टिसे मुरादाबाद और अलीगढ़-दिल्लीवालोंका बेटी-व्यवहार बुरा नहीं कहा जा सकता।

यदि इस प्रकारका सम्बन्ध बुरा समझा जायगा, तब तो फिर जातियोंकी जो वर्तमान संख्या है उसमें और भी वृद्धि करनेकी आवश्यकता होगी। ब्याहका क्षेत्र इससे भी अधिक संकीर्ण कर देना लाभदायक सिद्ध होगा। फिर तो मारवाड़के जो लोग अन्य प्रान्तोंमें बस गये हैं और धनी होगये है उनके साथ मारवाड़में रहनेवालोंको अपना भी ब्याह-सम्बन्ब बन्द कर देना चाहिए। क्योंकि वे लोग मारवाड़में आकर लड़कियाँ ले तो जाते हैं, पर देते अपने आसपास रहनेवाले धनियोंको है। और इस युक्तिके अनुयायी बननेके लिए तो इतना ही क्यों, प्रत्येक नगर और ग्रामवालोंको भी यह नियम बना लेना चाहिए कि वे दूसरे नगर और ग्रामवालोंको अपनी लड़कियाँ न दें!

दिगम्बर जैनमें गुरुजीके उक्त लेख पर एक सम्पादकीय नोट भी था। उसमें कहा गया था कि निर्धन और ग्रामनिवासिनी जैन जातियोंके लिए यह पारस्परिक बेटीव्यवहार विषतुल्य सिद्ध होगा और इसके लिए पद्मावती पुरवार जातिका दृष्टान्त दिया था। लिखा था कि इस जातिके अधिकांश लोग ग्रामोंमें रहते हैं और निर्धन हैं। उनसे शहरवाले दूसरी जातिके लोग लड़कियाँ ले तो जायँगे; पर देंगे नहीं। क्यों कि कोई भी नगरनिवासी अपनी लड़कीको ग्राममें और निर्धनके यहाँ नहीं देना चाहता। यह उदाहरण भी लगभग खंडेलवालोंके पूर्वोक्त दृष्टान्तके ही समान है। सम्पादक महाशयको शायद यह ध्यान ही नहीं रहा है, कि पद्मावती पुरवारोंके सिवाय और और जातियोंके लोग भी निर्धन और ग्रामोंमें रहनेवाले हैं, इस लिए वे पद्मावती पुरवारोंके साथ सम्बन्ध कर सकते हैं। नगरनिवासियों और धनियोंके यहाँ इतने अधिक लड़के नहीं होते हैं कि वे सारे ग्रामवासियोंकी लड़कियोंको चट कर जायँगे और ग्रामवासी लड़कोंके लिए लड़कियाँ बचेंगी ही नहीं। इसके सिवाय नगरनिवासियोंके यहाँ लड़कियाँ भी तो होती हैं। उनके लिए भी तो लड़के चाहिएँ। यदि यह कहा जाय कि वे अपनी लड़कियाँ धनियोंको देंगे, तो फिर जितने धनियोंके यहाँ धनियोंकी लड़कियाँ जायँगी, उतनी गरीबोंकी लड़कियाँ भी तो धनियोंके यहाँ जानेसे बची रहेंगी। इसके सिवाय पद्मावती पुरवारोंके ही पड़ौसमें रहनेवाली एक अग्रवाल जाति है। सुनते हैं इस जातिमें कन्याओंको वर नहीं मिलते। बीसों लड़कियाँ जीवनभर कुमारी रहती हैं। यदि पारस्परिक सम्बन्ध जारी हो जायगा, तो ये लड़कियाँ पद्मावती पुरवारोंको ब्याही जायँगी। इसके सिवाय यदि यह डर अनिवार्य ही हो, कि गरीब ग्रामवासियोंकी सारी लड़कियाँ छिन जायँगी और वे कुँआरे रह जायँगे तो इसके लिए और उपाय भी तो किये जा सकते हैं। अहमदाबादके श्वेताम्बर जैनोंकी एक धनिक जाति काठियावाड़के ग्रामोंसे लड़कियाँ ले तो आती थी; परन्तु देती नहीं थी। इस पर एक सज्जनने काठियावाड़ियोंको चेताया और तब उन्होंने यह नियम कर दिया कि अहमदाबादवालोंको उतनी ही लड़कियाँ दी जायँ, जितनी कि उनकी अपने गाँवोंमें ब्याह कर लाई जायँ। पद्मावती पुरवार भी चाहें तो इसी प्रकारका एक नियम बना सकते हैं, जिससे वे इस डरसे बचे रहें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तमाम जैन जातियोंमें बेटीव्यवहार होने लगेगा, तो यह स्थिर और निश्चित है कि कुँआरे पुरुषोंकी संख्या घटेगी। विवाहका क्षेत्र बढ़ जानेसे वर्तमानमें जितने पुरुषोंका विवाह हो सकता है, उतनेसे अधिक पुरुष ब्याहे जा सकेंगे। इस बातको अच्छी तरह समझनेके लिए कल्पना कीजिए कि तमाम जैन जातिके विवाहयोग्य स्त्रीपुरुषोंकी संख्या दश हजार है और वह नीचे लिखी पाँच जातियोंमें विभक्त है:—

	पुरुष	कन्या
खण्डेलवाल	१४००	११००
परवार	१०६०	९४०
अग्रवाल	१४५०	१५५०
पद्मावती पुरवार	८००	७००
हूमड़	६००	४००
	५३१०	४६९०

अब यदि इन सब जातियोंमें अपनी अपनी जातिके ही भीतर विवाह होगा तो खंडेलवालोंमें ३००, परवारोंमें १२०, पद्मावतीपुरवारोंमें १०० और हूमड़ोंमें २०० पुरुष नियमसे अविवाहित रहेंगे। अर्थात् चाहे जो उपाय किया जाय, इतने लोग कुँआरे रहेंगे ही। क्योंकि प्रत्येक जातिमें लड़कियोंकी संख्या कम है। और अग्रवालोंमें पुरुषोंकी संख्या कम है, इसलिए उनमें १०० लड़कियाँ कुँआरी रहेंगी। इस तरह सब जातियोंमें ७२० पुरुष और १०० लड़कियाँ कुँआरी रहेंगी, परन्तु यदि सब जातियोंका परस्पर विवाह होने लगेगा तो ५३१०—४६९०=६२० पुरुष ही कुँआरे रहेंगे और लड़की एक भी न रहेंगी, अर्थात् पारस्परिक विवाहसे २०० पुरुष और १०० लड़कियाँ अधिक ब्याही जा सकेंगी। इसके सिवाय अनमेलविवाह कम होंगे, पारस्परिक प्रीतिकी वृद्धि होगी, कन्याविक्रय कम होगा, और इसी तरहके और भी बहुतसे लाभ होंगे, जिनका विचार हम जैनहितैषी भाग ११ पृष्ठ ६२८ के लेखमें विस्तारके साथ कर चुके हैं।

छोटी छोटी जातियोंके बचानेके लिए—जिनकी जनसंख्या बहुत ही थोड़ी रह गई है—इससे अच्छा और कोई भी उपाय नजर नहीं आता। गत आसौज सुदी १० के जैनमित्रमें 'बुढ़ेले' नामक जैन जातिकी जनसंख्याका एक कोष्टक प्रकाशित किया गया है। उससे मालूम होता है कि इस जातिमें पुरुषोंकी संख्या ४५४ और स्त्रियोंकी ३७२ है। इनमेंसे १७७ पुरुष और १७८ स्त्रियाँ विवाहित हैं। विधवाओंकी संख्या ९४ है। ४५ वर्षकी उमरसे कमके ७३ पुरुष और १३१ बालक इस तरह कुल २०४ पुरुष विवाहयोग्य हैं, परन्तु कन्याओंकी संख्या कुल १०० ही है। अर्थात् इस जातिके १०४ पुरुषोंके भाग्यमें जीवन भर विना स्त्रीके रहना लिखा है। पाठक सोचें कि ऐसी दशामें यह जाति कितने समयतक अपना अस्तित्व बनाये रह सकती है। यदि इसे अन्य जातिवालोंके साथ ब्याह करनेकी आज्ञा मिल जायगी, तो इनमेंसे बहुतसे पुरुष ब्याहे जा सकेंगे। क्योंकि अन्य बड़ी बड़ी जातियोंमें कन्याओंकी संख्या इतनी कम नहीं है। इसमें तो आधेसे भी अधिक कम है।

यह संभव है कि दो चार जातियोंकी परिस्थिति ऐसी हो कि उन्हें इस पारस्परिक व्यवहारसे कुछ हानि होनेकी संभावना हो, पर वह हानि ऐसी नहीं हो सकती कि उसका कोई प्रतीकार ही न हो और उसके कारण सारे जैनसमाजकी भलाईके इस व्यवहारको रोक रक्खा जाय। किसीएक जातिकी रक्षाके लिए, जैसा कि ऊपर पद्मावतीपुरवारोंके सम्बन्धमें कहा गया है, खास नियम भी बनाये जा सकते हैं और उससे वह हानिसे बचा ली जा सकती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सारे जैनसमाजमें एकाध जाति ऐसी भी निकल सकती है जिसमें विवाहयोग्य पुरुषों और कन्याओंकी संख्या बराबर हो और सबके साथ सम्बन्ध करनेसे उसे यह हानि हो कि उसकी कन्यायें दूसरी जातियोंमें अधिक चली जायँ और उसके यहाँके कुछ पुरुष कुँआरे रह जायँ। अवश्य ही यह उस एक जातिके लिए हानिका कार्य है, परन्तु जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है हमें इस विषयमें समग्र जैनसमाजके लाभपर अधिक दृष्टि रखनी चाहिए। समाजके कार्यमें व्यक्तियोंको अपने स्वार्थोंका बलि देना ही पड़ता है। उन्हें यह सोचकर सन्तोष करना पड़ता है कि समाजका जो लाभ है, उसमें हमारा भी हिस्सा है।

जो सज्जन इस विषयके विरोधी हैं, उन्हें अपने और और विरोधोंको भी उपस्थित करना चाहिए जिससे उन पर विचार किया जा सके और यह विषय अच्छी तरहसे निर्णीत हो जाय।

पुस्तक-परिचय।

१ **प्राचीनजैनलेखसंग्रह** (प्रथम भाग)। सम्पादक, श्रीयुत मुनि जिनविजयजी और प्रकाशक, आत्मानन्द जैनसभा, भावनगर। द्विमाई आठ पेजी साइज। पृष्ठसंख्या १००। मूल्य आठ आना। उड़ीसा प्रान्तमें कटकके समीप भुवनेश्वर नामका एक प्रसिद्ध स्थान है। वहाँसे कोई ४–५ मीलके अन्तर पर खण्डगिरि और उदयगिरि नामकी दो पहाड़ियाँ हैं। इन दोनों पहाड़ियोंके शिखरों पर कई छोटी बड़ी गुफायें हैं। इन गुफाओंमेंसे हाथी गुहाका प्रसिद्ध शिलालेख और दूसरे तीन छोटे छोटे लेख अनेक टीकाओं और टिप्पणियों सहित इस पुस्तकमें प्रकाशित किये गये हैं। हमने जैनहितैषी भाग ९ अंक ११ में 'खण्डगिरि और कलिंगाधिपति खारवेल' नामका एक लेख प्रकाशित किया था। हितैषीके नियमित पाठकोंको उसका स्मरण होगा। उस लेखका मूल इन्हीं लेखोंमें है। इन लेखोंने–विशेषकरके हाथी गुफावाले लेखने–जैनधर्मके इतिहासपर एक अपूर्व प्रकाश डाला है। ईसवी सन्से कोई २०० वर्ष पहले कलिंगदेशमें महामेघवाहन खारवेल नामका एक बहुत ही प्रतापी राजा होगया है। भिक्षुराज भी इसका नाम था। इसे राजा नहीं, महाराजा अथवा सम्राट् कहना चाहिए। क्योंकि इसने प्रबलप्रतापान्वित मगध देश पर चढ़ाईकी थी और उसे जीत लिया था। लेखमें खारवेलका जन्मसे लेकर ३८ वर्षकी अवस्थातकका जीवन वृत्तान्त दिया है। यद्यपि लेखके अनेक अंश खंडित हो गये हैं; फिर भी वह बतलाता है कि उस समय उड़ीसाका प्रधान धर्म जैन था। खारवेल जैनधर्मका परम श्रद्धालु और प्रचारक था। उसने सिंहासन पर बैठनेके दूसरे वर्षमें विदर्भ (बरार) और महाराष्ट्रमें जैनधर्मके प्रचारका प्रयत्न किया, १२ वें वर्षमें मगध पर चढ़ाई की और उसमें विजय प्राप्त करके वह आदिनाथ भगवान्की उस प्रतिमाको वापस लेकर–लौटा जिसे कि नन्द राजा कलिंगसे ले गया था। इस प्रतिमाको खारवेलने एक बड़ा भारी मन्दिर बनवाकर उसमें स्थापित कराई। राज्यके तेरहवें वर्षमें उसने कुमारी (खण्डगिरि) पर्वत पर देश देशके महाविद्वानों और जैनसाधुओंको बुलाकर एक बड़ी भारी सभा की। उसकी पट्टराणीने जैनसाधुओंके रहनेके लिए गुफायें बनवाई। ये सब लेख प्राकृत भाषामें है और इनकी लिपि अशोकके समयकी लिपिसे मिलती जुलती हुई है। सबसे पहले एक साहबको सन् १८३० में इन लेखोंका पता लगा था। तबसे अबतक इनके विषयमें विद्वानोंमें जो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुछ चर्चा हुई है और इनके मुश्किलसे पढ़े जाने आदिके सम्बन्धमें जितनी घटनायें हुई हैं उन सबका इतिहास भी इस पुस्तकमें दिया गया है । कोई ५० वर्ष तक तो यह लेख अच्छी तरहसे पढ़ा ही नहीं गया था और इसके सिवाय कि यह बौद्धोंका है, किसीने इसके जैन होनेके विषयमें तो कल्पना भी नहीं की थी। सबसे पहले गुजरातके सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० भगवान्लाल इन्द्रजीने इन लेखोंको अच्छी तरह पढ़ा और इनके एक एक शब्द पर टीका टिप्पणी करके इनके सम्पूर्ण अभिप्रायको प्रकाशित किया। पुस्तकमें पं० भगवान्लालजीके लेखका पूरा अनुवाद दिया गया है। साथ ही श्रीयुत पं० केशवलाल ध्रुव महाशयका लेख भी अन्तमें जोड़ दिया गया है, जिसमें खारवेलके इतिहासपर कुछ और भी नया प्रकाश डाला गया है। कालिंगदेशके इतिहासादिके सम्बन्धमें और भी जो जो जानने योग्य बातें मिल सकी हैं, सम्पादक महाशयने उन सबका इस पुस्तकमें यथास्थान संग्रह कर दिया है। गरज यह कि उक्त लेखोंके मर्मको समझनेके लिए जो कुछ साधनसामग्री चाहिए वह सब इस सुसम्पादित पुस्तकमें संग्रह कर दी गई है । पुस्तककी भाषा गुजराती है । अच्छा होता, यदि यह हिन्दीमें भी प्रकाशित हो जाती । जैन विद्वानोंको इसकी एक एक प्रति अवश्य मँगा लेना चाहिए । यह श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायके अनुयायियोंके कामकी चीज है। क्यों कि ये लेख उस समयके हैं, जब शायद दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दो भेद ही जैनधर्ममें नहीं हुए थे । इससे इस बातका पता लगानेके भी साधन मिलेंगे कि आजसे २१०० वर्ष पहले जैनधर्मका स्वरूप वर्तमान दिगम्बर सम्प्रदायसे अधिक समानता रखता था या श्वेताम्बर सम्प्रदायसे । मुनि महोदयको ऐसी अच्छी उपयोगी पुस्तक लिखनेके लिए हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं ।

२ हर्षचरित भाषा। लेखक, पं० प्यारेलाल शर्मा दीक्षित, प्रकाशक, मनोरमा कार्यालय, मंडी धनौरा (यू.पी.)। आकार डबल क्राउन सोलह पेजी । पृष्ठ संख्या ८० । मूल्य आठ आने । संस्कृत कादम्बरीके कर्ता 'बाणभट्ट' संस्कृतके सुप्रसिद्ध कवि हो गये हैं । गद्यकाव्यकी रचनामें तो वे बेजोड़ समझे जाते हैं । उन्होंने अपने आश्रयदाता राजा हर्षवर्द्धनके नामको अमर बना देनेके लिए 'हर्षचरित' नामका भी एक काव्य लिखा था । संस्कृतमें जो थोड़ेसे ऐतिहासिक काव्य हैं, हर्षचरित भी उनमेंसे एक है । इसमें कविने अपने वंशका, अपना, महाराज हर्षवर्द्धनके वंशका और उनके यशका विस्तारसे परिचय दिया है । 'हर्ष' भारतवर्षका सुप्रसिद्ध सम्राट् हो गया है । उसके समान प्रबलप्रतापी और आदर्श राजा बहुत ही कम हुए हैं । चीनका प्रसिद्ध यात्री हुएनसंग इसीके समयमें यहाँ आया था । उसने अपने यात्राविवरणमें जिन बातोंका जिक्र किया है, उनमेंसे अनेक बातें हर्षचरितसे मिलती हैं । इस पुस्तकमें उसी संस्कृत 'हर्षचरित' का सारांश लिखा गया है । मूलमें जो लम्बे लम्बे समास और विशेषण हैं, उन्हें छोड़कर केवल कथाभागका ही यह अनुवाद है । अच्छा होता, यदि इसमें मूलका कुछ रसभाग भी लाया जाता । ऐसा करनेसे लोग इसे उत्कण्ठाके साथ पढ़ते । भूमिकामें महाराजा हर्ष और बाणका कुछ ऐतिहासिक परिचय अवश्य ही दिया जाना चाहिए था । इसके बिना साधारण पाठक नहीं समझ सकेंगे कि यह ग्रन्थ कितने महत्त्वका है ।

३ वेदान्तका विजयमंत्र—लेखक और प्रकाशक, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, जानसेनगंज, प्रयाग । पृष्ठसंख्या २८ । मूल्य डेढ़ आना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसके प्रारंभके १६ पृष्ठोंमें स्वामीजीका एक व्याख्यान है, जिसमें वेदान्तके–आत्मा अजर अमर है, सदा सत्यपथ पर आरूढ रहना और एक आत्माका अन्यान्य आत्माओंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है,–इन तीन सिद्धान्तों पर विचार किया है और बतलाया है कि, ये सिद्धान्त ही भारतवासियोंकी विजयके मंत्र हैं । इनके अनुसार चलनेसे वे जीवनयात्रामें कभी नहीं हार सकते । आत्मवादी पौर्वात्य और प्रकृतिवादी पाश्चात्य लोगोंका इस शताब्दिमें एक बड़ा भीषण संग्राम होनेवाला है । उसमें हमारी जीत अवश्य होगी, यदि हम वेदान्तके असली सिद्धान्तोंके पथ पर चलने लगें । स्वार्थी लोगोंने वेदान्तके असली सिद्धान्तोंको विगाड़ डाला है । आदि । व्याख्यानके आगेके पृष्ठोंमें आत्मवशी या संयमी योद्धाके लक्षण भगवद्गीताके कुछ श्लोक उद्धृत करके और उनका स्पष्टीकरण करके बतलाये हैं। पुस्तक अच्छी है । यदि वेदान्तके बिगड़े हुए रूपका और असली रूपका अन्तर भी शास्त्रीय पद्धतिसे बतला दिया गया होता, तो यह और भी कामकी चीज होती और इसका प्रभाव भी कुछ अधिक गहरा पड़ता।

४ मनुष्यजीवनके कर्तव्य । लेखक और प्रकाशक, बाबू सूरजमलजी जैन, मल्हार गंज, इन्दौर । पृष्ठसंख्या ६४ । मूल्य पाँच आने । इसमें सच्चरित्रता, आचरण और आदतोंका सम्बन्ध, मितव्ययिता, स्वच्छता, परोपकार, उदारता, कठिनाई और विद्याभ्यास आदि १६ विषयों पर छोटे छोटे पाठ हैं और वे लेखकने अपने विचारोंके अनुसार स्वतन्त्र लिखे हैं । जैसा कि ' वक्तव्य ' में स्वीकार किया गया है, पुस्तकमें शृंखलाबद्ध विचार नहीं हैं, फिर भी वे उपयोगी और शिक्षाप्रद हैं । विद्यार्थियों और युवकोंको इनसे बहुत लाभ हो सकता है ।

५ स्वराज्यकी पात्रता और इँग्लैण्डके स्वराज्यका इतिहास । अनुवादक, पं० रामेश्वर पाठक और प्रकाशक, ' ग्रन्थप्रकाशक समिति ' काशी । डबल क्राउन सोलहपेजी साइज । पृष्ठसंख्या ५४ । मूल्य पाँच आने । पुस्तकमें दो लेख हैं । पहला ४४ पृष्ठका है । कलकत्तेके सुप्रसिद्ध अँगरेजी पत्र ' माडर्न रिव्यू ' के सम्पादक श्रीयुक्त रामानन्द चट्टोपाध्यायने एक Towards Home Rule नामकी पुस्तक लिखी है । यह उसीके पहले लेखका अनुवाद है । इसमें यह अच्छी तरहसे सिद्ध कर दिया गया है कि भारतमें स्वराज्यको प्राप्त करनेकी यथेष्ट पात्रता है । हमारे हितशत्रुओंकी ओरसे जो थोथी और अविचारितरम्य दलीलें यह सिद्ध करनेके लिए दी जाती हैं कि भारतवासी स्वराज्य पानेके योग्य नहीं हैं, उनके युक्तियुक्त और मुँहतोड़ उत्तर देनेमें लेखकने कोई बात उठा नहीं रक्खी । जो लोग स्वराज्यसम्बन्धी आन्दोलनके विरुद्धमें हैं, अथवा जो यह समझते हैं कि भारत इसके योग्य नहीं है, उन्हें इस लेखको अवश्य पढ़ जाना चाहिए । मूल पुस्तकके अन्यान्य लेख भी शीघ्र प्रकाशित होने चाहिएँ । अनुवाद मजेका हुआ है । भाव समझनेमें कोई दिक्कत नहीं पड़ती । दूसरा १० पेजका लेख केसरीके सम्पादक श्रीयुत नरसिंह चिन्तामणि केलकरके लिखे हुए मराठी निबन्धका अनुवाद है । यह अनुवाद अच्छा नहीं हुआ । भाषामें मराठीपन मौजूद है । कहीं कहीं मूल लेखकका अभिप्राय मुश्किलसे समझमें आता है । पुस्तकके टाइटिलपेज पर तो पाठकजी अनुवादकर्ता प्रकट किये गये हैं, परन्तु पहले लेखके ऊपर अमरावतीके वकील श्रीयुत जयराम केसव असनारेका नाम है । मालूम नहीं, इसका कारण क्या है ।

६ राष्ट्रीय शिक्षा । प्रकाशक, ' ग्रन्थप्रकाशक समिति ' काशी । श्रीमती बीसेण्टके साथी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मि० जार्ज एस. आरंडेलने मद्रासके वैश्य छात्र-सम्मेलनके समक्ष एक शिक्षासम्बन्धी व्याख्यान दिया था। यह उसीका हिन्दी अनुवाद है। इसके अनुवादकर्ता हैं, श्रीयुत नारायण राजाराम सोमण। पृष्ठसंख्या ४४। मूल्य चार आने। व्याख्याता महाशय विदेशी हैं; परन्तु भारत वर्ष पर उनका प्रेम है और यहाँकी प्राचीन सभ्यता पर उनकी भक्ति है, इस कारण उन्होंने जो कुछ कहा है एक सच्चे भारतवासीके समान कहा है। यहाँकी प्राचीन शिक्षापद्धति बहुत अच्छी थी, वह धर्ममूलक थी, धर्म उसका प्राण था; उससे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियोंका विकास होता था, वर्तमान शिक्षाप्रणालीमें धर्मको कोई स्थान नहीं है, इस समय छात्रोंकी शारीरिक उन्नति पर ध्यान नहीं दिया जाता, छात्र देशहितसम्बन्धी कामोंसे दूर रक्खे जाते हैं; उनके लिए देशभक्ति अपराध है, सरकारकी शिक्षानीति अच्छी नहीं है, शिक्षासातेके सारे सूत्र देशवासियोंके हाथमें होने चाहिएँ, आदि अनेक बातों पर इसमें विचार किया गया है और राष्ट्रीय शिक्षाके प्रचारपर जोर दिया गया है। अनुवाद मजेका है।

७ ऐतिहासिक राससंग्रह–भाग १ लो अने २ जो। संशोधक और सम्पादक, शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरि ए. एम. ए. एस. बी.। प्रकाशक, अभयचन्द भगवानदास गाँधी, प्रबन्धक, श्रीयशोविजयजैनग्रन्थमाला। इसके पहले भागमें डिमाई आठ पेजी आकारके १५० और दूसरे भागमें ११० पृष्ठ हैं। मूल्य प्रत्येकका आठ आना। गुजराती भाषामें जैनकवियोंने सैकड़ों 'रासा' ग्रन्थ बनाये हैं, इस बातकी चर्चा हितैषीमें कई बारकी जा चुकी है। इन रासाओंमें बहुतसे रासा ऐसे हैं, जिनके कथानायक स्वयं ग्रन्थकर्ताओंके समयमें या उनसे कुछ पहले हो गये हैं और इसलिए इतिहासकी दृष्टिसे उनका बहुत कुछ मूल्य है। इसी प्रकारके छह रासाओंका संग्रह पहले भागमें और तीनका दूसरे भागमें है। प्रारंभमें प्रत्येक रासेका संक्षिप्त सार, तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक टिप्पण और ग्रन्थकर्त्ताका परिचय भी लगा दिया गया है। इसके लिए सम्पादक महाशयने यथेष्ट परिश्रम किया है। इन सब रासाओंमेंसे चार विक्रमकी १६ वीं शताब्दिके, तीन १७ वींके और दो १८ वीं शताब्दिके बने हुए हैं। काव्यकी दृष्टिसे इनकी रचना बहुत ही साधारण श्रेणीकी है। इस प्रकारके और भी कई रासे इस पुस्तकमालाके आगे निकलनेवाले भागोंमें प्रकाशित किये जायँगे। सूरि महोदयका यह प्रयत्न प्रशंसनीय है।

८ जेनरल जार्ज वाशिंगटनका जीवन-चरित्र। लेखक, श्रीयुत पं० रामप्रसाद त्रिपाठी एम. ए.। प्रकाशक, बाबू मनोहरदास, शारदा बुकडिपो, काशी। डबल क्राउन सोलह पेजी साइजके १८० पृष्ठ। कपड़ेकी जिल्दसहित पुस्तकका मूल्य एक रुपया। अमेरिकाका संयुक्त राज्य पहले इंग्लैण्डका उपनिवेश था। उसका शासन इंग्लैण्डकी पार्लमेंण्टके द्वारा होता था। अमेरिकामें जो फरासीसी बसते थे, उन्होंने एक बार वहाँके इँग्लैंडवासियोंके साथ जमीनके सम्बन्धमें झगड़ा किया। झगड़ा बहुत बढ़ गया और वह युद्धसे शान्त हुआ। इस फरासीसी युद्धमें इंग्लैण्डका धन बहुत खर्च हुआ था, इसलिए पार्लमेण्टने इस युक्तिको उपस्थित करके उक्त खर्चको नये टेक्सोंके द्वारा अमेरिकावालोंसे वसूल करनेका निश्चय किया कि इस युद्धसे अमेरिकावालोंका ही बहुत लाभ हुआ है। पर यह बात अमेरिकावालोंको असह्य हुई। उन्होंने टैक्स देनेका विरोध करना शुरू किया। झगड़ा बहुत बढ़ गया। पार्लमेंटका पित्त ऊँचा हो गया। उसने कठोर नीतिका अवलम्बन किया और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसका परिणाम स्वभावतः अमेरिकावालोंको अपने हठ पर दृढतासे आरूढ रहनेमें हुआ। अन्तमें युद्धकी भेरी बज उठी, इंग्लैण्डसे सेनायें आने लगीं। लगातार कई वर्षोंतक यह युद्ध होता रहा और अमेरिकावालोंने अपना सर्वस्व लगाकर वह 'स्वाधीनता' प्राप्त की, जिसे वे आज ऊँचा मस्तक किये हुए भोग रहे हैं। इस युद्धके प्रधान नेता जार्ज वाशिंगटन थे। उन्हींके अश्रान्त परिश्रम, देशभक्ति, उत्साह, सच्चरित्रता आदि गुणोंके कारण यह विजय प्राप्त हुई थी। इस ग्रन्थमें इसी महात्माका—अमेरिकाकी स्वाधीनताके पिताका—जीवनचरित्र लिखा गया है। प्रत्येक देशभक्तके पढ़नेकी चीज है। चरित्रके साथ ही साथ अमेरिकाके संक्षिप्त इतिहासका भी इससे परिचय प्राप्त हो जायगा। भाषा साधारणतः अच्छी है। प्रूफसंशोधन सावधानीसे नहीं किया गया।

नीचे लिखी हुई पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकार की जाती हैं:—

१ कृपण (प्रहसन)। ले० और प्र०—बाबू फूलचन्द जैन, शिकोहाबाद (यू. पी.)।

२ चार सालकी सम्मिलित रिपोर्ट, बुंदेलखण्ड जैन संस्कृत एंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल, बांदा। प्र०—नायक राजारामजी मंत्री।

३ जैनोंका धर्म, ४ पर्युषणपर्वमें क्या करना, ५ इन्दौरका जैनसमाज और फूटका राज्य। प्रकाशक, जैनसमाज सेवक मण्डल, गोराकुंड, इन्दौर सिटी।

६ वार्षिक रिपोर्ट १२-१३ वें वर्षकी, श्रीस्याद्वाद महाविद्यालय, काशी।

७ चन्द्रकला नाटक। ले०, पं० मुन्नालाल शर्मा और प्रकाशक, लाला माँगीलालजी गुप्त, छावनी नीमच।

८ बारहवाँ वार्षिक विवरण—तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई। प्र०, लाला भागमल प्रभुदयालजी।

९ दो वर्षोंकी रिपोर्ट, दि० जैन श्राविकाश्रम, मुरादाबाद। प्रका०, गंगादेवी।

१० सप्तभंगीनय। ले०, लाला कन्नोमल एम. ए.। प्र०, आत्मानन्द जैन ट्रेक्ट सुसाइटी, अम्बाला शहर।

११ शिशु-लोरी। संग्रहकर्त्ता और प्रकाशक, श्रीयुत बनवारीलाल गुप्त, कासगंज, एटा।

१२ जैनभजनतरंगिणी। ले०, कविवर हीरालालजी महाराज। प्रकाशक, नौरतनमल, बोहरा, जैनपुस्तकप्रचारक मंडल, अजमेर।

१३ माधुर्यलता। लेखक, कुमुद। प्रकाशक धन्नालाल कठरया, माणिक ग्रन्थमाला कार्यालय, बीना इटावा, (सागर) सी. पी.।

१४ जैनसिद्धान्त विद्यालयकी सातवीं वार्षिक रिपोर्ट। प्र०, पं० वंशीधर जैन, मोरेना (ग्वालियर)।

पछतावा।

(लेखक—**श्रीयुत प्रेमचन्दजी**।)

[१]

पंडित दुर्गानाथ जब कालेजसे निकले तो उन्हें जीवननिर्वाहकी चिंता उपस्थित हुई। वे दयालु और धार्मिक पुरुष थे। इच्छा थी कि ऐसा काम करना चाहिए जिससे अपना जीवन भी साधारणतः सुखपूर्वक व्यतीत हो और दूसरोंके साथ भलाई और सदाचरणका भी अवसर मिले। वे सोचने लगे—यदि किसी कार्यालयमें क्लर्क बन जाऊँ तो अपना निर्वाह तो हो सकता है किन्तु सर्व साधारणसे कुछ भी सम्बन्ध न रहेगा। वकालतमें प्रविष्ट हो जाऊँ तो दोनों बातें सम्भव हैं, किन्तु अनेकानेक यत्न करने पर भी अपनेको पवित्र रखना कठिन होगा। पुलिस विभागमें दीनपालन और परोपकारके लिए बहुतसे अव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर मिलते रहते हैं; किन्तु एक स्वतन्त्र और सद्विचार-प्रिय मनुष्यके लिए वहाँकी हवा हानिप्रद है। शासनविभागमें नियम और नीतियोंकी मरमार रहती है। कितना ही चाहो पर वहाँ कड़ाई और डाँट डपटसे बचे रहना असम्भव है। इसी प्रकार बहुत सोचविचारके पश्चात् उन्होंनें निश्चय किया कि किसी जमींदारके यहाँ 'मुख्तार आम' बन जाना चाहिए। वेतन तो अवश्य कम मिलेगा किन्तु दीन खेतिहरोंसे रात दिन सम्बन्ध रहेगा—उनके साथ सद्व्यवहारका अवसर मिलेगा। साधारण जीवन निर्वाह होगा और विचार दृढ होंगे।

कुँवर विशालसिंहजी एक सम्पत्तिशाली जमींदार थे। पं० दुर्गानाथने उनके पास जाकर प्रार्थना की कि मुझे भी अपनी सेवामें रखकर कृतार्थ कीजिए। कुँवर साहबने इन्हें सिरसे पैर तक देखा और कहा—पण्डितजी, आपको अपने यहाँ रखनेमें मुझे बड़ी प्रसन्नता होती किन्तु आपके योग्य मेरे यहाँ कोई स्थान नहीं देख पड़ता।

दुर्गानाथने कहा—मेरे लिये किसी विशेष स्थानकी आवश्यकता नहीं है। मैं हरएक काम कर सकता हूँ। वेतन आप जो कुछ प्रसन्नतापूर्वक देंगे मैं स्वीकार करूँगा। मैंने तो यह संकल्प कर लिया है कि सिवा किसी रईसके और किसीकी नौकरी न करूँगा। कुँवर विशालसिंहने अभिमानसे कहा—रईसकी नौकरी नहीं राज्य है। मैं अपने चपरासियोंको दो रुपया माहवार देता हूँ और वे तंजेबके अँगरखे पहनकर निकलते हैं। उनके दरवाजों पर घोड़े बँधे हुए हैं। मेरे कारिन्दे पाँच रुपयेसे अधिक नहीं पाते किन्तु शादी विवाह वकीलोंके यहाँ करते हैं। न जाने उनकी कमाईमें क्या बरकत होती है। बरसों तनख्वाहका हिसाब नहीं करते। कितने ऐसे हैं जो विना तनख्वाहके कारिन्दगी या चपरासगरीको तैयार बैठे हैं। परन्तु अपना यह नियम नहीं। समझ लीजिए, मुख्तार आम अपने इलाकेमें एक बड़े जमींदारसे भी अधिक रौब रखता है। उसका ठाट बाट उसकी हुकूमत छोटे छोटे राजाओंसे कम नहीं। जिसे इस नौकरीका चसका लग गया है उसके सामने तहसीलदारी झूठी है।

पण्डित दुर्गानाथने कुँवर साहबकी बातोंका समर्थन न किया जैसा कि करना उनको सभ्यतानुसार उचित था। वे दुनियादारीमें अभी कच्चे थे, बोले—मुझे अबतक किसी रईसकी नौकरीका चसका नहीं लगा है। मैं तो अभी कालेजसे निकला आता हूँ। और न मैं इन कारणोंसे नौकरी करना चाहता हूँ जिन्हें आपने वर्णन किये। किन्तु इतने कम वेतनमें मेरा निर्वाह न होगा। आपके और नौकर असामियोंका गला दबाते होंगे। मुझसे मरते समय तक ऐसे कार्य्य न होंगे। यदि सच्चे नौकरका सन्मान होना निश्चय है तो मुझे विश्वास है कि बहुत शीघ्र आप मुझसे प्रसन्न होजायँगे।

कुँवर साहबने बड़ी दृढतासे कहा—हाँ यह तो निश्चय है कि सत्यवादी मनुष्यका आदर सब कहीं होता है। किन्तु मेरे यहाँ तनख्वाह अधिक नहीं दी जाती।

जमींदारके इस प्रतिष्ठा-शून्य उत्तरको सुनकर पण्डितजी कुछ खिन्नहृदयसे बोले—तो फिर मजबूरी है। मेरे द्वारा इस समय कुछ कष्ट आपको पहुँचा हो तो क्षमा कीजिएगा। किन्तु मैं यह आपसे कह सकता हूँ कि ईमानदार आदमी आपको इतना सस्ता न मिलेगा।

कुँवरसाहबने मनमें सोचा कि मेरे यहाँ सदा अदालत कचहरी लगी ही रहती है। सैकड़ों रुपये तो डिगरी और तजवीजों तथा और और अँगरेजी कागजोंके अनुवादमें लग जाते हैं। एक अँगरेजीका पूर्ण पण्डित सहजहीमें मुझे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिल रहा है। सो भी अधिक तनख्वाह नहीं देनी पड़ेगी, इसे रख लेना ही उचित है। लेकिन पण्डितजीकी बातका उत्तर देना आवश्यक था, अतः कहा—महाशय, सत्यवादी मनुष्यको कितना ही कम वेतन दिया जावे किन्तु वह सत्यको न छोड़ेगा। और न अधिक वेतन पानेसे बेईमान सच्चा बन सकता है। सचाईका रुपयेसे कुछ सम्बन्ध नहीं। मैंने ईमानदार कुली देखे हैं और बेईमान बड़े बड़े धनाढ्य पुरुष। परन्तु अच्छा; आप एक सज्जन पुरुष हैं। आप मेरे यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहिए। मैं आपको एक इलाकेका अधिकारी बना दूँगा और आपका काम देखकर तरक्की भी कर दूँगा।

दुर्गानाथजीने २०) मासिक पर रहना स्वीकार कर लिया। यहाँसे कोई ढाई मीलपर कई गाँवोंका एक इलाका चाँदपारके नामसे विख्यात था। पण्डितजी इसी इलाकेके कारिन्दे नियत हुए।

[२]

पण्डित दुर्गानाथ चाँदपारके इलाकेमें पहुँचे और अपने निवासस्थानको देखा, तो उन्होंने कुँवरसाहबके कथनको बिल्कुल सत्य पाया। यथार्थमें रियासतकी नौकरी सुख सम्पत्तिका घर है। रहनेके लिए सुन्दर बंगला है। जिसमें बहुमूल्य बिछौना बिछा हुआ था, सैकड़ों बीघेकी सीर, कई नौकर चाकर, कितने ही चपरासी, सवारीके लिए एक सुन्दर टाँगन, सुख और ठाट बाटके सामान उपस्थित। किन्तु इस प्रकारकी सजावट और विलास-युक्त सामग्री देखकर उन्हें उतनी प्रसन्नता न हुई। क्यों कि इसी सजे हुए बंगलेके चारों ओर किसानोंके झोंपड़े थे। फूसके घरोंमें मिट्टीके बर्तनोंके सिवा और सामान ही क्या था। वहाँके लोगोंमें वह बंगला कोटके नामसे विख्यात था। लड़के उसे भयकी दृष्टिसे देखते। उसके चबूतरे पर पैर रखनेका उन्हें साहस न पड़ता। इस दीनताके बीचमें इतना बड़ा ऐश्वर्य्ययुक्त दृश्य उनके लिए अत्यंत हृदयविदारक था। किसानोंकी यह दशा थी कि सामने आते हुए थरथर काँपते थे। चपरासी लोग उनसे ऐसा बर्ताव करते कि पशुओंके साथ भी वैसा नहीं होता है।

पहले ही दिन कई सौ किसानोंने पण्डितजीको अनेक प्रकारके पदार्थ भेंटके रूपमें उपस्थित किये, किन्तु जब वे सब लौटा दिये गये तो उन्हें बहुत ही आश्चर्य हुआ। किसान प्रसन्न हुए किन्तु चपरासियोंका रक्त उबलने लगा। नाई व कहार खिदमतको आये, किन्तु लौटा दिये गये। अहीरोंके घरोंसे दूधसे भरा हुआ एक मटका आया। वह भी वापस हुआ। तमोली एक डोली पान लाया, किन्तु वे भी स्वीकार न हुए। असामी आपसमें कहने लगे कि कोई धर्मात्मापुरुष आये हैं। परन्तु चपरासियोंको तो ये नई बातें असह्य हो गईं। उन्होंने कहा—हुजूर, अगर आपको ये चीजें पसन्द न हों तो न लें मगर रस्मको तो न मिटावें। अगर कोई दूसरा आदमी यहाँ आवेगा तो उसे नये सिरेसे यह रस्म बाँधनेमें कितनी दिक्कत होगी। यह सब सुनकर पंडितजीने केवल यही उत्तर दिया—जिसके सिर पर पड़ेगा वह भुगत लेगा। मुझे इसकी चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता? एक चपरासीने साहस बाँधकर कहा—इन असामियोंको आप जितना गरीब समझते हैं उतने गरीब ये नहीं हैं। इनका ढंग ही ऐसा है। भेस बनाये रहते हैं। देखनेमें ऐसे सीधे सादे मानों बेसींगकी गाय हैं, लेकिन सच मानिए इनमेंका एक एक आदमी हाईकोरटका वकील है।

चपरासियोंके इस वादविवादका प्रभाव पंडितजी पर कुछ न हुआ। उन्होंने प्रत्येक गृहस्थसे दयालुता और भाईचारेका आचरण करना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आरम्भ किया। सबेरेसे ८ बजे तक वे गरीबोंको विना दाम ओषधियाँ देते, फिर हिसाब किताबका काम देखते । उनके सदाचरणने असामियोंको मोह लिया । मालगुजारीका रुपया जिसके लिये प्रतिवर्ष कुरकी तथा नीलामकी आवष्यकता होती थी इस वर्ष एक इशारे पर वसूल हो गया। किसानोंने अपने भाग सराहे और वे मनाने लगे कि हमारे सरकारकी दिनोंदिन बढ़ती हो।

[३]

कुँवर विशालसिंह अपनी प्रजाके पालन पोषण पर बहुत ध्यान रखते थे। वे बीजके लिए अनाज देते और मजूरी और बैलोंके लिए रुपये। फस्ल कटने पर एकका डेढ़ वसूल कर लेते। चाँदपारके कितने ही असामी इनके ऋणी थे। चैतका महीना था। फ़स्ल कट कट कर खलियानमें आरही थी। खलियानमेंसे कुछ नाज घरमें भी आने लगा था। इसी अवसर पर कुँवर साहबने चाँदपारवालोंको बुलाया और कहा—हमारा नाज और रुपया बेबाक कर दो। यह चैतका महीना है। जब तक कड़ाई न की जाय तुम लोग डकार नहीं लेते। इस तरह काम नहीं चलेगा। बूढ़े मलूकाने कहा—सरकार, भला असामी कभी अपने मालिकसे बेबाक हो सकता है। कुछ अभी ले लिया जाय, कुछ फिर दे देवेंगे। हमारी गर्दन तो सरकारकी मुट्ठीमें है।

कुँवरसाहब—आज कौड़ी कौड़ी चुका कर यहाँसे उठने पाओगे। तुम लोग हमेशा इसी तरह हीला हवाला किया करते हो।

मलूका (विनयके साथ)—हमारा पेट है सरकारकी रोटियाँ हैं, हमको और क्या चाहिए। जो कुछ उपज है वह सब सरकारहीकी है।

कुँवर साहबसे मलूकाकी यह वाचालता सही न गई। उन्हें इस पर क्रोध आगया। राजा, रईस ठहरे। बहुत कुछ खरी खोटी सुनाई और बोले—कोई है! जरा इस बुड्ढेका कान तो गरम करे, यह बहुत बढ़ बढ़ कर बातें करता है। उन्होंने तो कदाचित् धमकानेकी इच्छासे कहा, किन्तु चपरासियोंकी आँखोंमें चाँदपार खटक रहा था। एक तेज़ चपरासी कादिर खाँने लपक कर बूढ़ेकी गर्दन पकड़ी और ऐसा धक्का दिया कि बेचारा ज़मीन पर जा गिरा। मलूकाके दो जवान बेटे वहाँ चुप चाप खड़े थे। बापकी ऐसी दशा देखकर उनका रक्त गर्म हो उठा। वे दोनों झपटे और कादिरखाँ पर टूट पड़े। धमाधम शब्द सुनाई पड़ने लगा। खाँ साहबका पानी उतर गया। साफ़ा अलग जा गिरा। अचकनके टुकड़े टुकड़े होगये। किन्तु ज़बान चलती ही रही।

मलूकाने देखा, बात बिगड़ गई। वह उठा और कादिरखांको छुड़ाकर अपने लड़कोंको गालियाँ देने लगा। जब लड़कोंने उसीको डाँटा, तब दौड़कर कुँवरसाहबके चरणों पर गिर पड़ा। पर बात यथार्थमें बिगड़ गई थी। बूढ़ेके इस विनीत भावका कुछ प्रभाव न हुआ। कुँवरसाहबकी आँखोंसे मानों आगके अङ्गारे निकल रहे थे। वे बोले—बेईमान, आँखोंके सामनेसे दूर हो जा। नहीं तेरा खून पी जाऊँगा।

बूढ़ेके शरीरमें रक्त तो अब वैसा न रहा था किन्तु कुछ गर्मी अवश्य थी। वह समझा था कि ये कुछ न्याय करेंगे, परन्तु यह फटकार सुनकर बोला—सरकार बुढ़ापेमें आपके दरवाज़े पर पानी उतर गया और तिसपर सरकार हमीको डाँटते हैं। कुँवरसाहबने कहा—तुम्हारी इज्जत अभी क्या उतरी है, अब उतरेगी।

दोनों लड़के सरोष बोले—सरकार अपना रुपया लेंगे कि किसीकी इज्जत लेंगे।

कुँवरसाहब (ऐंठकर)—रुपया पीछे लेंगे। पहले देखेंगे कि तुम्हारी इज्जत कितनी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

[४]

चाँदपारके किसान अपने गाँव पर पहुँचकर पण्डित दुर्गानाथसे अपनी रामकहानी कह ही रहे थे कि कुँवरसाहबका दूत पहुँचा और खबर दी कि सरकारने आपको अभी बुलाया है।

दुर्गानाथने असामियोंको परितोष दिया और आप घोड़ेपर सवार होकर दरबारमें हाजिर हुए।

कुँवरसाहबकी आँखें लाल थीं। मुखकी आकृति भयंकर हो रही थी। कई मुख्तार और चपरासी बैठे हुए आग पर तेल डाल रहे थे। पंडितजीको देखते ही कुँवरसाहब बोले—चाँदपार वालोंकी हरकत अपने देखी?

पंडितजीने नम्रभावसे कहा—जी हाँ सुनकर बहुत शोक हुआ। यह तो ऐसे सरकश न थे।

कुँवरसाहब—यह सब आपहीके आगमनका फल है। आप अभी स्कूलके लड़के हैं। आप क्या जानें कि संसारमें कैसे रहना होता है। यदि आपका बर्ताव असामियोंके साथ ऐसा ही रहा तो फिर मैं जमींदारी कर चुका। यह सब आपकी करनी है। मैंने इसी दरवाजे पर असामियोंको बाँध बाँध कर उलटे लटका दिया है और किसीने चूँतक न की। आज उनका यह साहस कि मेरे ही आदमी पर हाथ चलायें।

दुर्गानाथ (कुछ दबते हुए)—महाशय, इसमें मेरा क्या अपराध? मैंने तो जबसे सुना है तभीसे स्वयं सोचमें पड़ा हूँ।

कुँवरसाहब—आपका अपराध नहीं तो किसका है? आपहीने तो इनको सर चढ़ाया। बेगार बन्द कर दी, आपही उनके साथ भाईचारेका बर्ताव करते हैं, उनके साथ हँसी मजाक करते हैं। ये छोटे आदमी इस बर्तावकी कदर क्या जानें। कितनी बातें स्कूलोंहीके लिए हैं। दुनियाके व्यवहारका कानून दूसरा है। अच्छा जो हुआ सो हुआ। अब मैं चाहता हूँ कि इन बदमाशोंको इस सरकशीका मजा चखाया जाय। असामियोंको आपने मालगुजारीकी रसीद तो नहीं दी है?

दुर्गानाथ (कुछ डरते हुए)—जी नहीं, रसीदें तैयार हैं, केवल आपके हस्ताक्षरोंकी देर है।

कुँवरसाहब (कुछ संतुष्ट होकर)—यह बहुत अच्छा हुआ। शकुन अच्छे हैं। अब आप इन रसीदोंको चिराग़अलीके सिपुर्द कीजिए। इन लोगों पर बकाया लगानकी नालिश की जायेगी, फ़स्ल नीलाम करा लूँगा। जब भूखों मरेंगे तब सूझेगी। जो रुपया अबतक वसूल हो चुका है, वह बीज और ऋणके खातेमें चढ़ा लीजिए। आपको केवल यही गवाही देनी होगी कि यह रुपया मालगुजारीके मदमें नहीं कर्जके मदसे वसूल हुआ है। बस।

दुर्गानाथ चिन्तित हो गये। सोचने लगे कि क्या यहाँ भी उसी आपत्तिका सामना करना पड़ेगा, जिससे बचनेके लिए, इतने सोच विचारके बाद, यह शान्तिकुटीर ग्रहण किया था। क्या जान बूझ कर इन गरीबोंकी गर्दन पर छुरी फेरूँ, इस लिए कि मेरी नौकरी बनी रहे। नहीं, यह मुझसे न होगा। बोले—क्या मेरी शहादत बिना काम न चलेगा?

कुँवर साहब (क्रोधसे)—क्या इतना कहनेमें भी आपको कोई उज्र है?

दुर्गानाथ (द्विविधामें पड़े हुए)—जी यों तो मैंने आपका नमक खाया है। आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करना मुझे उचित है, किन्तु न्यायालयमें मैंने गवाही कभी नहीं दी है। सम्भव है कि यह कार्य्य मुझसे न हो सके। अतः मुझे तो क्षमा ही कर दिया जाय।

कुँवर साहब (शासनके ढंगसे)—यह काम आपको करना पड़ेगा। इसमें हाँ—नहींकी आवश्यकता नहीं। आग आपने लगाई है, बुझावेगा कौन?

दुर्गानाथ (दृढ़ताके साथ)—मैं झूठ कदापि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं बोल सकता। और न इस प्रकार शहादत दे सकता हूँ।

कुँवर साहब (कोमल शब्दोंमें)—कृपानिधान, यह झूठ नहीं है। मैंने झूठका व्यापार नहीं किया है। मैं यह नहीं कहता कि आप रुपयेका वसूल होना अस्वीकार कर दीजिए। जब असामी मेरे ऋणी हैं तो मुझे अधिकार है कि चाहे रुपया ऋणके मदमें वसूल करूँ या मालगुजारीके मदमें। यदि इतनी सी बातको आप झूठ समझते हैं तो आपकी ज़बरदस्ती है। अभी आपने संसार देखा नहीं। ऐसी सचाईके लिए संसारमें स्थान नहीं। आप मेरे यहाँ नौकरी कर रहे हैं। इस सेवकधर्म पर विचार कीजिए। आप शिक्षित और होनहार पुरुष हैं। अभी आपको संसारमें बहुत दिन तक रहना है और बहुत काम करना है। अभीसे आप यह धर्म और सत्यता धारण करेंगे तो अपने जीवनमें आपको आपत्ति और निराशाके सिवा और कुछ प्राप्त न होगा। सत्यप्रियता अवश्य उत्तम वस्तु है किन्तु उसकी भी सीमा है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। अब अधिक सोचविचारकी आवश्यकता नहीं। यह अवसर ऐसा ही है।

कुँवर साहब पुराने खुर्राट थे। इस फैंकैनतसे युवक खिलाड़ी हार गया।

[५]

इन घटनाके तीसरे दिन चाँदपारके असामियों पर बकायालगानकी नालिश हुई। समन आये। घर घर उदासी छा गई। समन क्या थे, यमके दूत थे। देवी देवताओंकी मन्नतें होने लगीं। स्त्रियाँ अपने घरवालोंको कोसने लगीं, और पुरुष अपने भाग्यको। नियत तारीखके दिन गाँवके गँवार कन्धे पर सोटा डोर रक्खे और अँगोछेमें चबेना बाँधे कचहरीको चले। सैकड़ों स्त्रियाँ और बालक रोते हुए उनके पीछे पीछे जाते थे। मानों अब वे फिर उनसे न मिलेंगे।

पंडित दुर्गानाथके लिए ये तीन दिन कठिन परीक्षाके थे। एक ओर कुँवर साहबकी प्रभावशालिनी बातें, दूसरी ओर किसानोंकी हाय हाय। परन्तु विचारसागरमें तीन दिन तक निमग्न रहनेके पश्चात् इन्हें धरतीका सहारा मिल गया। उनकी आत्माने कहा— यह पहली परीक्षा है। यदि इसमें अनुत्तीर्ण रहे तो फिर आत्मिक दुर्बलता ही हाथ रह जायगी। निदान निश्चय हो गया कि मैं अपने लाभके लिए इतने गरीबोंको हानि न पहुँचाऊँगा।

दसबजे दिनका समय था। न्यायालयके सामने मेला सा लगा हुआ था। जहाँ तहाँ श्याम वस्त्राच्छादित देवताओंकी पूजा हो रही थी। चाँदपारके किसान झुंडके झुंड एक पेड़के नीचे आकर बैठे। उनसे कुछ दूर पर कुँवरसाहबके मुख्तार आम, सिपाहियों और गवाहोंकी भीड़ थी। ये लोग अत्यंत विनोदमें थे। जिस प्रकार मछलियाँ पानीमें पहुँचकर किलोलें करती हैं, उसी भाँति ये लोग भी आनन्दमें चूर थे। कोई पान खा रहा था, कोई हलवाईकी दूकानसे पूरियोंके पत्तल लिये चला आता था। उधर बेचारे किसान पेड़के नीचे चुप चाप उदास बैठे थे कि आज न जाने क्या होगा, कौन आफत आयेगी, भगवानका भरोसा है। मुकदमेकी पेशी हुई। कुँवर साहबकी ओरके गवाह गवाही देने लगे कि ये असामी बड़े सरकश हैं। जब लगान माँगा जाता है तो लड़ाई झगड़े पर तैयार हो जाते हैं। अबकी इन्होंने एक कौड़ी भी नहीं दी।

कादिर खाँने रोकर अपने सिरकी चोट दिखाई। सबके पीछे पंडित दुर्गानाथकी पुकार हुई। उन्हींके बयान पर निपटारा था। वकील साहबने उन्हें खूब तोतेकी भाँति पढ़ा रक्खा था,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु उनके मुखसे पहला वाक्य निकला था कि मजिस्ट्रेटने उनकी ओर तीव्र दृष्टिसे देखा। वकील साहब बगलें झाँकने लगे। मुख्तार आमने उनकी ओर घूर कर देखा। अहलमद, पेशकार आदि सबके सब उनकी ओर आश्चर्य्यकी दृष्टिसे देखने लगे।

न्यायाधीशने तीव्र स्वरमें कहा—तुम जानते हो कि मजिस्ट्रेटके सामने खड़े हो?

दुर्गानाथ (दृढ़तापूर्वक)—जी हाँ भली भाँति जानता हूँ।

न्याया०—तुम्हारे ऊपर असत्य भाषणका अभियोग लगाया जाता है।

दुर्गानाथ—अवश्य। यदि मेरा कथन झूठा हो।

वकीलने कहा—जान पड़ता है किसानोंके दूध घी और भेंट आदिने यह कायापलट कर दी है। और न्यायाधीशकी ओर सार्थक दृष्टिसे देखा।

दुर्गानाथ—आपको इन वस्तुओंका अधिक तजरुवा होगा। मुझे तो अपनी रूखी रोटियाँ ही अधिक प्यारी हैं।

न्यायाधीश—तो इन असामियोंने सब रुपया बेबाक कर दिया है?

दुर्गानाथ—जी हाँ, इनके जिम्मे लगानकी एक कौड़ी भी बाकी नहीं है।

न्यायालय—रसीदें क्यों नहीं दीं?

दुर्गानाथ—मेरे मालिककी आज्ञा।

[६]

मजिस्ट्रेटने नालिशें डिसमिस कर दीं। कुँवर साहबको ज्यों ही इस पराजयकी खबर मिली, उनके कोपकी मात्रा सीमासे बाहर हो गई। उन्होंने पंडित दुर्गानाथको सैकड़ों कुवाक्य कहे—नमकहराम, विश्वासघाती, दुष्ट। ओह मैंने उसका कितना आदर किया, किन्तु कुत्तेकी पूँछ कहीं सीधी हो सकती है! अन्तमें विश्वासघात कर ही गया। यह अच्छा हुआ कि पं० दुर्गानाथ मजिस्ट्रेटका फैसला सुनते ही मुख्तार आमको कुंजियाँ और कागज पत्र सुपुर्द कर चलते हुए। नहीं तो उन्हें इस कार्य्यके फलमें कुछ दिन हल्दी और गुड़ पीनेकी आवश्यकता पड़ती!

कुँवरसाहबका लेन देन विशेष अधिक था। चाँदपार बहुत बड़ा इलाका था। वहाँके असामियोंपर कई सौ रुपये बाकी थे। उन्हें विश्वास हो गया कि अब रुपया डूब जायगा। वसूल होनेकी कोई आशा नहीं। इस पंडितने असामियोंको बिल्कुल बिगाड़ दिया। अब उन्हें मेरा क्या डर। अपने कारिन्दों और मंत्रियोंसे सम्मति ली। उन्होंने भी यही कहा—अब वसूल होनेकी कोई सूरत नहीं। कागजात न्यायालयमें पेश किये जायँ तो इनकम टैक्स लग जायगा। किन्तु रुपया वसूल होना कठिन है। उजरदारियाँ होंगी। कहीं हिसाबमें कोई भूल निकल आई तो रही सही साख भी जाती रहेगी और दूसरे इलाकोंका रुपया भी मारा जायगा।

दूसरे दिन कुँवरसाहब पूजा पाठसे निश्चिन्त हो अपने चौपालमें बैठे, तो क्या देखते हैं कि चाँदपारके असामी झुंडके झुंड चले आ रहे हैं। उन्हें यह देखकर भय हुआ कि कहीं ये सब कुछ उपद्रव तो न करें, किन्तु किसीके हाथमें एक छड़ीतक न थी। मलूका आगे आगे आता था। उसने दूरहीसे झुककर वन्दना की। ठाकुर साहबको ऐसा आश्चर्य्य हुआ, मानों कोई स्वप्न देख रहे हों।

[७]

मलूकाने सामने आकर विनयपूर्वक कहा—सरकार, हम लोगोंसे जो कुछ भूलचूक हुई उसे क्षमा किया जाय। हम लोग सब हजूरके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाकर हैं; सरकारने हमको पाला-पोसा है। अब भी हमारे ऊपर ही निगाह रहे।

कुँवरसाहबका उत्साह बढ़ा। समझे कि पंडितके चले जानेसे इन सबोंके होश ठिकाने हुए हैं। अब किसका सहारा लेंगे। उसी खुर्रा-टने इन सबोंको बहका दिया था। कड़ककर बोले—वे तुम्हारे सहायक पंडित कहाँ गये? वे आ जाते तो जरा उनकी खबर ली जाती।

यह सुनकर मलूकाकी आँखोंमें आँसू भर आये। बोला—सरकार उनको कुछ न कहें। वे आदमी नहीं, देवता थे। जवानीकी सौगन्ध है, जो उन्होंने आपकी कोई निन्दा की हो। वे बेचारे तो हम लोगोंको बार बार समझाते थे कि देखो, मालिकसे बिगाड़ करना अच्छी बात नहीं। हमसे कभी एक लोटा पानीके खादार नहीं हुए। चलते चलते हम लोगोंसे कह गये कि मालिकका जो कुछ तुम्हारे जिम्मे निकले, चुका देना। आप हमारे मालिक हैं। हमने आपका बहुत खाया पिया है। अब हमारी यही विनती सरकारसे है कि हमारा हिसाब किताब देखकर जो कुछ हमारे ऊपर निकले बताया जाय। हम एक एक कौड़ी चुका देंगे तब पानी पियेंगे।

कुँवरसाहब सन्न हो गये। इन्हीं रुपयोंके लिए कई बार खेत कटवाने पड़े थे। कितनी बार घरोंमें आग लगवाई। अनेक बार मारपीट की। कैसे कैसे दंड दिये। और आज ये सब आपसे आप सारा हिसाब किताब साफ करने आये हैं! यह क्या जादू है!

मुख्तार आमसाहबने कागजात खोले और असामियोंने अपनी अपनी पोटलियाँ। जिसके जिम्मे जितना निकला, बे-कान पूछ हिलाये उसने द्रव्य सामने रख दिया। देखते देखते सामने रुपयोंका ढेर लग गया। ६०० रुपया बातकी बातमें वसुल होगये। किसीके जिम्मे कुछ बाकी न रहा। यह सत्यता और न्यायकी विजय थी। कठोरता और निर्दयतासे जो काम कभी न हुआ वह धर्म और न्यायने पूरा कर दिखाया।

जबसे ये लोग मुकद्दमा जीत कर आये तभीसे उनको रुपया चुकानेकी धुनि सवार थी। पंडितजीको वे यथार्थमें देवता समझते थे। उनकी रुपया चुका देनेके लिए विशेष आज्ञा थी। किसीने अन्न बेचा, किसीने बैल, किसीने गहने बन्धक रक्खे। यह सब कुछ सहन किया, परन्तु पंडितजीकी बात न टाली। कुँवरसाहबके मनमें पंडितजीके प्रति जो बुरे विचार थे वे सब मिट गये। लेकिन उन्होंने सदासे कठोरतासे काम लेना सीखा था। उन्हीं नियमों पर वे चलते थे। न्याय तथा सत्यता पर उनका विश्वास न था। किन्तु आज उन्हें प्रत्यक्ष देख पड़ा कि सत्यता और कोमलतामें बहुत बड़ी शक्ति है।

ये असामी मेरे हाथसे निकल गये थे। मैं इनका क्या बिगाड़ सकता था? अवश्य यह पंडित सच्चा और धर्मात्मा पुरुष था। उसमें दूरदर्शिता न हो, कालज्ञान न हो, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह निस्पृह और सच्चा पुरुष था।

[८]

कैसी ही अच्छी वस्तु क्यों न हो, जब तक हमको उसकी आवश्यकता नहीं होती तब तक हमारी दृष्टिमें उसका गौरव नहीं होता। हरी दूब भी किसी समय अशर्फियोंके मोल बिक जाती है। कुँवरसाहबका काम एक निस्पृह मनुष्यके विना रुक नहीं सकता था। अतएव पंडितजीके इस सर्वोत्तम कार्य्यकी प्रशंसा किसी कविकी कवितासे अधिक न हुई। चाँदपारके असामियोंने तो अपने मालिकको कभी किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचाया, किन्तु अन्य इलाकोंवाले असामी उसी पुराने ही ढंगसे चलते थे। उन इलाकोंमें रगड़-झगड़ सदैव मची रहती थी। अदालत, मारपीट, डाँट-डपट सदा लगी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहती थी । किन्तु ये सब तो ज़मींदारीके सिंगार हैं । विना इन सब बातोंके जमींदारी कैसी ? क्या दिन भर बैठे बैठे वे मक्खियाँ मारें ?

कुँवरसाहब इसी प्रकार पुराने ढँगसे अपना प्रबन्ध सँभालते जाते थे । कई वर्ष व्यतीत हो गये । कुँवरसाहबका कारवार दिनों दिन चमकता ही गया। यद्यपि उन्होंने ५ लड़कियोंके विवाह बड़ी धूमधामके साथ किये, परन्तु तिस पर भी उनकी बढ़तीमें किसी प्रकारकी कमी न हुई । हाँ, शारीरिक शक्तियाँ अवश्य कुछ कुछ ढीली पड़ती गईं । बड़ी भारी चिन्ता यही थी कि इस बड़ी सम्पत्ति और ऐश्वर्यका भोगनेवाला कोई उत्पन्न न हुआ। भानजे भतीजे और नवासे, इस रियासत पर दाँत लगाये हुए थे ।

कुँवरसाहबका मन अब इन सांसारिक झगड़ोंसे फिरता जाता था । आखिर यह रोना धोना किसके लिए । अब उनके जीवन-नियममें एक परिवर्तन हुआ। द्वार पर कभी कभी साधू सन्त धूनी रमाये हुए देख पड़ते । स्वयं भगवद्गीता और विष्णुपुराण पढ़ते। पारलौकिक चिन्ता अब नित्य रहने लगी । परमात्माकी कृपा ! साधू सन्तोंके आशीर्वादसे बुढ़ापेमें उनके एक लड़का पैदा हुआ । जीवनकी आशायें सफल हुईं । दुर्भाग्यवश पुत्रके जन्महीसे कुँवरसाहब शारीरिक व्याधियोंमें ग्रस्त रहने लगे । सदा वैद्यों और डाक्टरोंका ताँता लगा रहता था । लेकिन दवाओंका उलटा प्रभाव पड़ता । ज्यों त्यों करके उन्होंने ढाई वर्ष बिताये। अन्तमें उनकी शक्तियोंने जवाब दे दिया । उन्हें मालूम हो गया कि अब संसारसे नाता टूट जायगा । अब चिन्ताने और धर दबाया—यह सारा माल असबाब, इतनी बड़ी सम्पत्ति किस पर छोड़ जाऊँ ? मनकी इच्छायें मनहीमें रह गईं । लड़केका विवाह भी न देख सका । उसकी तोतली बातें सुननेका भी सौभाग्य न हुआ । हाय अब इस कलेजेके टुकड़ेको किसे सौंपूँ, जो उसे अपना पुत्र समझे । लड़केकी माँ स्त्रीजाति न कुछ जाने न समझे । उससे कारवार सँभलना कठिन है। मुख्तार आम, गुमाश्ते, कारिन्दे कितने हैं परन्तु सबके सब स्वार्थी, विश्वासघाती। एक भी ऐसा पुरुष नहीं जिस पर मेरा विश्वास जमे। कोर्ट आव वार्ड्सके सुपुर्द करूँ तो वहाँ भी ये ही सब आपत्तियाँ । कोई इधर दबायेगा कोई उधर । अनाथ बालकको कौन पूछेगा ? हाय, मैंने आदमी नहीं पहिचाना ! मुझे हीरा मिल गया था, मैंने उसे ठीकरा समझा ! कैसा सच्चा, कैसा वीर, दृढ़प्रतिज्ञ पुरुष था! यदि वह कहीं मिल जावे तो इस अनाथ बालकके दिन फिर जायँ । उसके हृदयमें करुणा है, दया है। वह एक अनाथ बालक पर तरस खायगा। हा ! क्या मुझे उसके दर्शन मिलेंगे। मैं उस देवताके चरण धोकर माथे पर चढ़ाता । आँसुओंसे उसके चरण धोता । वही यदि हाथ लगाये तो यह मेरी डूबती हुई नाव पार लगे ।

[८]

ठाकुर साहबकी दशा दिन पर दिन बिगड़ती गई । अब अन्तकाल आ पहुँचा । उन्हें पंडित दुर्गानाथकी रट लगी हुई थी । बच्चेका मुँह देखते और कलेजेसे एक आह निकल जाती । बार बार पछताते और हाथ मलते । हाय ! उस देवताको कहाँ पाऊँ । जो कोई उसके दर्शन करा दे आधी जायदाद उसके न्योछावर कर दूँ । प्यारे पंडित ! मेरे अपराध क्षमा करो । मैं अन्धा था, अज्ञान था । अब मेरी बाँह पकड़ो । मुझे डूबनेसे बचाओ । इस अनाथ बालक पर तरस खाओ । हितार्थी और सम्बन्धियोंका समूह सामने खड़ा था । कुँवर साहबने उनकी ओर अधखुली आँखोंसे देखा । सच्चा हितैषी कहीं देख न पड़ा । सबके चेहरे पर स्वार्थकी झलक थी । निराशासे आँखें मूँद लीं । उनकी स्त्री फूट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फूट कर रो रही थी। निदान उसे लज्जा त्यागनी पड़ी। वह रोती हुई पास जाकर बोली—प्राणनाथ, मुझे और इस असहाय बालकको किस पर छोड़े जाते हो? कुँवर साहबने धीरेसे कहा—पंडित दुर्गानाथ पर। वे जल्द आवेंगे। उनसे कह देना कि मैंने सब कुछ उनके भेट कर दिया। यह मेरी आन्तिम वसीयत है।

जैनसमाजके क्षयरोग पर एक दृष्टि।

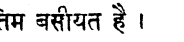

(लेखक, श्रीयुत **बाबू रतनलाल जैन** बी. ए. एल एल. बी.)

हम लोग कहते आते हैं कि जैनधर्म अनादि कालसे है और यह धर्म एक समय भारतवर्षका मुख्य धर्म रहा है। इस धर्मको सेवन करके अनन्त जीव मुक्त होकर सच्चिदानन्द पदको प्राप्त हुए हैं। ऐतिहासिक प्रमाणोंसे भी यह सिद्ध है कि जैनधर्म भारतवर्षका एक बहुत बड़ा धर्म रहा है। इस धर्मने सम्राट् चन्द्रगुप्त और खारवेल आदिके आश्रित रहकर केवल भारतवर्षका ही नहीं संसार भरके जीवोंका कल्याण किया है। प्राचीन जैन साहित्य पर दृष्टि डालनेसे विदित होता है कि इस धर्मके अनुयायी बड़े बड़े दिग्गज और जगद्विजयी विद्वान् रहे हैं, और वे गणनामें भी कम न थे।

पर आज जैनियोंकी संख्या तथा उसके विद्वानों पर दृष्टि डालते ही मालूम पड़ जाता है कि अब यह धर्म नामका ही धर्म रह गया है। संसारके जीवोंकी उन्नति करनेसे इसने मुँह मोड़ लिया है और अब यह इस लोकसे लुप्त होना चाहता है। इसकी जनसंख्याको देखिए कि यह कितनी तेजीसे नाश हो रही है:—

सन् १८९१—१४, १६, ६३८.
सन् १९०१—१३, ३४, १४०.
सन् १९११—१२, ४८, १८२.

अर्थात् १८९१ से लगाकर १९११ ई० तकके २० वर्षोंमें ११ प्रतिशत कम हो गई। यदि यह घटोतरी इसी तरह जारी रही तो दोसौ या तीनसौ वर्षोंमें यह जैनधर्म भारतसे उठ जावेगा। अब तनिक भारतवर्षके अन्य धर्मावलम्बियोंके बढ़ने और घटनेको देखिए:—

धर्म	सन् १८९१ से १९०१ तक जनसंख्यामें प्रतिशत बढ़ना या घटना।	सन् १९०१ से १९११ तक जनसंख्यामें प्रतिशत घटना तथा बढ़ना।
बौद्ध	+ ३२·९ बढ़ना	+ १३·१ बढ़ना
ईसाई	+ २८ ,,	+ ३२·६ ,,
सिक्ख	+ १५·१ ,,	+ ६·३३ ,,
मुसलमान	+ ८·९ ,,	+ ६·७ ,,
पारसी	+ ४·७ ,,	+ ६·३ ,,
हिन्दू	-- ·३ घटन	+ १५·०४ ,,
जैनी	-- ५·२ ,,	-- ६·४ घटना

ऊपरके कोष्टकसे पता लग जायगा कि भारतकी सब जातियोंके लोग बढ़े परन्तु अभागे जैनी घटे। १९०१ ई० से १९११ तकके दस वर्षोंमें कुल भारतवासी ११·८ प्रति सैकड़ा और कुल हिन्दू १५·०४ प्रति सैकड़ा बढ़े, किन्तु जैनी ६·४ प्रति सैकड़ा कम हुए। जैनी लोग भी अन्य भारतवासियोंकी तरह ११·८ प्रति सैकड़ा बढने चाहिए थे, परन्तु वे घटे हैं उलटे ६·४ प्रति सैकड़ा। जैनियोंकी वास्तविक घटोतरी १८·२ प्रति सैकड़ा हुई है। भला इस घटीका कोई हिसाब है! जिस जातिमें मनुष्य-संख्या इस तेजीके साथ घटे क्या वह जाति—चाहे उसकी संख्या करोड़ोंकी क्यों न हो—जीवित रह सकती है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनीलोग तो केवल साढ़े बारह लाख ही रह गये हैं !

हे जैनधर्मावलिम्बियो, यदि तुम जैनधर्मको भारत-वर्षमें स्थित रखना चाहते हो, तो मोह-निद्रा छोड़ो और उन कीड़ोंको पहचानो जिन्होंने जैनजातिके मूलमें लगकर उसे खोखला कर डाला है । यह जैनधर्म और जैनजातिके जीवन मरणका प्रश्न है । इसको अच्छी तरह मनन कर निर्णय करो और इसके मूलमें लगे हुए कीड़ोंको पहचानकर दूर कर दो । तुम्हारा सम्यक्त्वका स्थितिकरण अंग कहाँ गया जो तुम अपने भाइयोंका नाश होते हुए देखते हो और उनके बचानेका कोई प्रयत्न नहीं करते । यदि आपके हृदयमें धर्मका कुछ भी अंश शेष है तो कटिबद्ध होकर खड़े हो जाओ और जैन-जातिके क्षयको रोको ।

यद्यपि भारतवर्ष एक बहुत ही बड़ा देश है, उसमें बहुतसे प्रान्त हैं और भिन्न भिन्न प्रान्तोंके रीति-रिवाजोंमें कुछ अन्तर भी है, तो भी वे-रीतीरिवाज जिनसे जैनधर्मानुयायियोंकी संख्यामें दिनपर दिन ह्रास होरहा है, साधारणतः एकसे हैं । यह हो सकता है कि एक प्रान्तमें एक कारणसे जैनियोंकी संख्यामें अधिक हानि हुई हो और दूसरे प्रांतमें किसी दूसरे ही कारणसे हुई हो । इस लेखमें जैनियोंका नाश और उसके कारण बतलानेके लिए युक्तप्रान्तके जैनियोंकी संख्या दी गई है । जो कारण जैन जातियोंके नाशके युक्तप्रान्तमें हैं, लगभग वे ही कारण अन्य प्रान्तों पर भी लागू होते हैं ।

जो मनुष्य-संख्या इस लेखमें दी है वह मनुष्य-गणनाकी सरकारी रिपोर्टसे है और वह दिगम्बर जैन डायरेक्टरीमें दी हुई दिगम्बर जैनियोंकी संख्यासे भी मिलती है । सरकारी रिपोर्टमें जो जैनियोंकी संख्या दी गई है, वह करीब करीब ठीक है । उसकी सत्यताका पता इससे भी लगता है कि बिजनौर जिलेमें जैनियोंकी ओरसे बिजनौरके जैनियोंकी जो गणना सन् १९११ के लगभग की गई थी वह १९११ ई० की सरकारी रिपोर्टमें दी हुई गणनासे मिलती है ।

इस लेखके साथमें चार कोष्टक प्रकाशित किये जाते हैं । उनमेंसे **पहले कोष्टक**में युक्त-प्रान्तके प्रत्येक जिलेकी जैन जनसंख्या दी हुई है, जिससे यह ज्ञान हो जायगा कि किस किस जिलेमें १८९१ ई० से १९११ ई० तक के दस वर्षोंमें और १९०१ ई० से १९११ ई० के तकके दस वर्षोंमें कितनी घटोतरी या बढ़ोतरी हुई है । सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, अलीगढ़, मथुरा, आगरा, फर्रुखाबाद, मैनपुरी, एटा, कानपुर और इलाहाबादके जिलों पर अधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता है ।*

दूसरे कोष्टकमें मुख्य मुख्य नगरोंकी जैन और हिन्दू जनसंख्या सन् १९०१ और सन् १९११ की दी हुई है । इससे ज्ञात हो जायगा कि सन् १९०१ ई० से १९११ ई० तकके दस वर्षोंमें किस किस नगरमें जैनसंख्याकी कितनी घटोतरी या बढ़ोतरी हुई है और साथमें यह भी मालूम हो जावेगा कि उन नगरोंमें उन्हीं दस वर्षोंमें कितने हिन्दू भाई घटे हैं या बढ़े हैं ।

अलीगढ़, आगरा, फिरोजाबाद, कोसी, एटा, कानपुर, इलाहाबाद और रामपुर रियासतकी जनसंख्याओं पर अधिक ध्यान देना चाहिए ।

* सन् १८९१ ई० की सरकारी रिपोर्टके अन्दर बहुत त्रुटियाँ रहगई थीं । एक तो बहुतसे जैनी जैनियोंमें गिने जानेसे रह गये थे, इसलिए कई स्थानोंपर जैनी १८९१ से १९०१ ई० तकके दस वर्षोंमें बढ़े मालूम होते हैं, दूसरे युक्तप्रान्तके हिन्दू और मुसलमानोंकी संख्या १८९१ से १९०१ ई० के अन्दर दस वर्षोंमें बहुत बढ़ी थी, इसलिए उक्त दस वर्षोंमें जैन जनसंख्या भी बढ़नी चाहिए थी, वह बढ़ी न थी ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीसरे कोष्टकसे यह ज्ञात हो जायगा कि संयुक्त प्रान्तके जुदा जुदा भागोंमें सन् १९११, १९०१, १८९१ व १८८१ ई० में कुल दस सहस्र जनसंख्यामें जैनी कितने थे, और वे कुल जनसंख्याकी अपेक्षा कितने घटे बढ़े हैं। इससे मालूम हो जायगा कि अन्यमतावलम्बी कितने बढ़ गये और उनकी अपेक्षा हम कितने घट गये।

चौथे कोष्टकसे यह ज्ञात हो जावेगा कि सन् १९११ ई० में जैनी किस किस आयुके कितने थे और वे विवाहित, अविवाहित या रँडुवे, कैसे थे। इससे यह भी ज्ञात हो जायगा कि सन् १९११ में कितनी विधवायें किस किस अवस्था की थीं।

सन् १९०२ ई० में युक्तप्रान्तकी जो जैन-जनसंख्या ८४,५८२ थी वह १९११ ई० में ७५,७९५ रह गई। अर्थात् १० प्रतिशत कम हो गई। इन वर्षोंमें हिन्दू प्रति सैकड़े १.४ और मुसलमान १.१ घटे। ईसाई ७३.७ बढ़े और आर्यसमाजी दूने हो गये।

यद्यपि जैनी आर्यसमाजियों और ईसाइयों-के समान बढ़ने न चाहिए थे; क्योंकि ये आर्य-समाजियों और ईसाइयोंके समान अन्यधर्मा-वलम्बियोंको जैनी नहीं बनाते, तो भी ये हिन्दुओं और मुसलमानोंकी अपेक्षा अधिक कदापि न घटने चाहिए थे। यदि ये घटते तो हिन्दुओं और मुसलमानोंकी भाँति प्रति सैकड़े १.४ और १.१ ही घटते; परन्तु ये घटे हैं १० प्रति सैकड़े। युक्तप्रान्तकी जनसंख्याके ह्रासका मुख्य कारण प्लेग है। जैन जाति अन्य जातियोंकी अपेक्षा अधिक धनवान् है, इस लिए यह जाति अपनी इस कालरूप प्लेगके मुँहसे अन्य जातियोंकी अपेक्षा अधिक रक्षा कर सकती थी, इस हेतुसे जैनी मुसलमान और हिन्दुओंकी भाँति १.१ और १.४ प्रतिशत कम न होने चाहिए थे, या यह कहना चाहिए कि जैन-जातिको घटना ही न चाहिए था।

मनुष्यगणनाकी रिपोर्टके देखनेसे और समीपवर्त्ती हिन्दूसमाजकी नगरवासी अग्रवाल, खंडेलवाल, पल्लीवाल आदि वैश्य जातियों, गौड, सनाढ्य आदि ब्राह्मण जातियों, और अन्य उच्च जातियोंकी स्थिति पर दृष्टि डालनेसे मालूम होता है कि, इन उच्च जातियोंका ह्रास हो रहा है और इनका क्षय जैनजातियोंसे भी अधिक है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि जब ये उच्च जातियाँ कम हो रही हैं तो हिन्दू जातिकी कमी प्रतिशत १.४ ही क्यों? जैन जातिकी भाँति १० प्रतिशत या उससे भी अधिक क्यों नहीं? यह प्रतिशत १-४ की कमी इस लिए है कि हिन्दू जातिमें ग्रामवासी जाट, धीवर, चमार, भंगी आदि नीच जातियाँ भी सम्मिलित हैं जिनकी संख्या सदैव बढ़ा करती है और उनके सम्मिलित होनेके कारण हिन्दू जातिमें अधिक कमी नहीं मालूम होती।

सम्पत्तिशास्त्रके वेत्ताओं और बड़े बड़े विद्वानों-का कथन है कि जीवित, निरोगी और धनवान् जातिकी जनसंख्या ३० वर्षमें दुगुनी हो जाती है, अर्थात् प्रति दस वर्षमें २५ प्रतिशत बढ़ जाती है। पर हमारे इस युक्तप्रान्तकी जैन-जातिकी वृद्धिकी तो बात ही क्या यह तो उलटी दस वर्षोंमें १० प्रति शत घट गई, अर्थात् इसकी २५ प्रतिशतकी स्वाभाविक वृद्धि रुकी और १० प्रति शत घटोतरी हुई, इस तरह इसका कुल ह्रास ३५ प्रतिशत हुआ।

उक्त बातोंसे पता लगता है कि, जैनजाति अनेक रोगोंसे पीड़ित है। जबतक रोगोंका अनुसंधान न किया जावेगा, तबतक न ये रोग दूर किये जा सकते हैं और न रोगोंसे बचनेके उपाय सोचे जा सकते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनसमाजके नाश होनेके मुख्य मुख्य कारण ये हैं:—

१ प्लेग आदि रोग,

२ निर्धनता, या दरिद्रता,

३ स्वास्थ्य (तन्दुरुस्ती) की ओरसे उदासीनता,

४ *बाल्यविवाह,*

५ वृद्धविवाह,

६ व्यभिचार,

७ पुरुषोंका अविवाहित रह जाना,

८ छोटी छोटी जातियोंका होना और अपनी जातिके अतिरिक्त अन्य जातिमें विवाह न करना,

९ *विवाहके समय बहुतसे गोत्रोंका* टालना

१० एक ही जातिमें ऊँच नीच घर और

११ आर्यसमाजी हो जाना तथा हिन्दूओंमें मिल जाना।

१ प्लेग आदि रोग । जितनी क्षति युक्तप्रान्तमें जैन और अजैन संख्याकी सन १९०१ ई० से १९११ ई० तकके दस वर्षोंमें इस स्पर्श और वायुके द्वारा बढ़नेवाले प्लेगसे हुई है, उतनी किसी और कारणसे नहीं हुई। कितने ही घरोंका तो नाम तक नहीं रहा। इस भयानक रोगके पंजेमें बूढ़े अधिक नहीं फँसे; इसने अधिकतर उन युवा पुरुषों और स्त्रियों पर हाथ साफ किया है जिनसे सन्तान उत्पन्न होती है और जनसंख्या बढ़ती है। युवक और युवतियोंमें भी इसने युवतियोंको अधिक सताया है । सैकड़े पीछे ४५ पुरुष और ५५ स्त्रियाँ मृत्युको प्राप्त हुई हैं। एक तो स्त्रियाँ पुरुषोंसे यों ही कम थीं; फिर प्लेगने और अधिक कम कर दीं। चेचक (शीतला) रोगमें बहुतसे बच्चे पीडित हुए और उनमेंसे बहुतसे मर गये। इनके अतिरिक्त अन्य रोगोंसे भी समाजको हानि पहुँची है ।

२ निर्धनता । इससे युक्तप्रान्तके जैनी ही क्या सारे *भारतवासी पीडित* हैं। यहाँके भूखोंके हाहाकारसे आकाश भी गूँज उठा है। निर्धनताके होनेसे समाजको पुष्टकारी भोजन नहीं मिलता। दूध और घी जिन पर कि पूर्वकालमें भारतवासियोंका जीवन निर्भर था, आजकल भारतवर्षसे बिदा हो रहे हैं। इनके न मिलनेसे स्त्री पुरुष दुर्बल हो गये हैं और दुर्बलताके कारण ये शीघ्र रोगोंके पंजोंमें पड़ जाते हैं। निर्धन होनेसे रोगोंका इलाज नहीं किया जा सकता, अपनेको मृत्युके हाथमें तत्काल ही सौंप देना पड़ता है। यही कारण है कि भारतवासी यूरोप आदि देशोंकी तरह संख्यामें नहीं बढ़ते। जैनी हिन्दुओं और मुसलमानोंकी अपेक्षा अधिक धनवान् हैं, इससे निर्धनताका प्रभाव जैनियों पर कुछ कम पड़ा होगा। अब रहा यह कि, फिर हमारी हिन्दू मुसलमानोंकी अपेक्षा अधिक घटी क्यों हुई, सो इसका उत्तर यह है कि, अधिक घटीके कारण दूसरे ही हैं ।

जैनजाति किसी समय धनवान् थी, पर अब नहीं है। अब तो यह दिन पर दिन निर्धन होती जाती है। इस निर्धनतासे बचनेके लिए आवश्यक है कि इसे ब्याह शादियोंकी, ज्योनारोंकी, नुक्तोंकी तथा और भी तरह तरहकी फिजूल खर्चियोंको एकदम उठा देना चाहिए। इन दुःखके दिनोंमें ये बातें शोभा नहीं देतीं। निर्धनताका दूसरा कारण व्यापारकी दुर्दशा है। सो इसके लिए नये नये व्यापारोंकी ओर नजर डालना चाहिए । नये ढंगके व्यापार पुराने व्यापारोंको मिटाते जा रहे हैं। इसके लिए देशोंविदेशोंमें घूमकर और अनुभव प्राप्त करके नये व्यापारोंको हस्तगत करना चाहिए । जातिके धनियोंको ऐसी संस्थायें खोलनी चाहिएँ जिनमें निर्धनों और निरुद्योगियोंको तरह तरहके शिल्प, व्यापार, कृषि आदिके कार्य सिखलाये जायँ और उन्हें जीविकाके मार्ग सुगम कर दिये जायँ।

३ स्वास्थ्यकी ओरसे उदासीनता ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यगणनाकी रिपोर्टसे मालूम होता है कि हिन्दूसमाजकी गौड, कान्यकुब्ज, अग्रवाल, पल्लीवाल, राजवंशी, लोहिये आदि उच्च जातियाँ जिनका कि खान-पान, रहन-सहन, जीविका आदि जैनजातियोंके ही समान हैं—१९०१ से १९११ तकके दश वर्षोंमें जैनियोंसे भी अधिक घटी है। नगरोंमें रहनेवाले उच्च जातिके हिन्दुओंको ध्यानपूर्वक देखनेसे भी मालूम होता है कि ग्रामीण–परिश्रमशील किसानोंकी अपेक्षा उनमें सन्तानोत्पत्ति कम होती है और नई उमरके स्त्री-पुरुषोंकी मृत्यु अधिक होती है। इसका कारण उनका व्यवसाय है।

हिन्दुओंमें सैकड़े पीछे ७५.६ खेती करनेवाले, १० खेतोंमें मजदूरी करनेवाले और शेष सब और और काम करनेवाले हैं। मुसलमानोंमें ५० खेती करनेवाले, २५ मजदूरी करनेवाले और २५ शिल्प तथा व्यापारादि करनेवाले हैं। इधर जैनियोंमें २२ खेती करनेवाले, ६६ वाणिज्य करनेवाले और शेष १२ दीगर काम करनेवाले हैं। जैनियोंमें ये जो २२ खेती करनेवाले हैं उनमें वे लोग नहीं हैं, जो खेतोंमें खड़े होकर हल चलाते हैं या स्वयं खेती करते हैं। इनमें अधिकांश जमींदार हैं, जो खेतोंद्वारा उत्पन्न हुए धनके द्वारा जीवित रहते हैं। कृषिजीवी हिन्दुओं और मुसलमानोंमें इस प्रकारके जमींदार अधिकसे अधिक ५ प्रति सैकड़ा ही होंगे, शेष परिश्रमी किसान और मजदूर ही होंगे। हिन्दू और मुसलमानोंमें वाणिज्य और जमींदारी करनेवालोंकी औसत थोड़ी है, पर जो है उसकी दशा जैनियोंकी सी ही है।

उच्च जातिके हिन्दू और जैनी प्रातःकालसे लेकर सायंकाल तक या तो दूकान पर बैठे रहते हैं, या घरोंके मुलायम गद्दोंपर आरामसे पड़े रहते हैं, या एक स्थान पर बैठे हुए लिखा-पढ़ीका काम किया करते हैं। इन्हें स्वच्छ हवा नहीं मिलती और इनके शरीरका व्यायाम नहीं होता। यही दशा इनके घरकी स्त्रियोंकी रहती है। ये सदैव ही घरके अन्दर बन्द रहती हैं। स्वच्छ वायु तो इनके भाग्यमें ही नहीं लिखी। या तो ये रसोई बनाने, बर्तन मलने और बच्चोंके पालन पोषणमें लगी रहती हैं, या पलंगपर बैठी हुई दूसरों पर आज्ञा चलाया करती हैं। पहले प्रकारकी स्त्रियाँ कुछ परिश्रम करती हैं, इस कारण वे तो किसी कदर अच्छी भी रहती हैं; परन्तु दूसरे प्रकारकी अमीरोंकी बहू-बेटियाँ तो सदा ही बीमार रहती हैं। प्रसवकाल तो इनके लिए बहुत ही भयानक होता है। इससे यदि ये बच गई, तो समझो कि इनका दूसरा जन्म हुआ। आजकल घरू कामकाज करना भी बुरा समझा जाने लगा है। परिश्रमसे घृणा होना बहुत ही बुरी बात है।

ग्रामवासी किसानों और उनकी स्त्रियोंकी दशा इनसे ठीक उलटी है। ये बड़े परिश्रमी होते हैं और खेतोंकी स्वच्छ वायुका सेवन करते रहते हैं। इसी कारण ये कम पुष्ट भोजन पाने पर भी उच्च श्रेणीके लोगोंकी अपेक्षा अधिक बलवान् और हृष्ट पुष्ट होते हैं। इनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। इनकी स्त्रियाँ घरका सारा कामकाज करती हैं, पानी भरकर लाती हैं, आटा पीसती हैं, भोजन बनाती हैं, खेतों पर जाती हैं, और इस तरह परिश्रम करते रहनेसे *खूब हट्टी कट्टी* रहती हैं। न ये स्वयं बीमार रहती हैं और इनकी सन्तान नगरवासियोंकी तरह दुर्बल, पीली और अल्पायु होती है।

प्राचीन कालमें नागरिकोंकी ऐसी दशा न थी। उन्हें परिश्रमसे इतनी घृणा न थी। तीस चालीस वर्ष पहले इस देशमें हर जगह सैकड़ों अखाड़े थे। दूकानों पर बैठनेवाले वैश्य लोग रातके समय इन अखाड़ोंमें जाकर दंड लगाते, बैठकें करतें, मुद्गर घुमाते और कुश्ती खेलते थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उन लोगोंके लिए सेर दो सेर दूध एक साँसमें पी जाना कोई बात ही न थी। उस समयकी स्त्रियाँ भी ऐसी ही थीं। वे घरके सारे कामकाज करती थीं। आज कलकी तरह नाजुक न थीं। इस समय भी उस समयके उत्पन्न हुए ६०–७० वर्षके बूढ़े वह शक्ति रखते हैं, जो आजकलके नौ जवानोंमें भी नहीं होती।

जैनसमाजको नाशसे बचानेके लिए सबसे पहले परिश्रम करने और व्यायाम करनेकी शिक्षा मिलनी चाहिए। इन कामोंको छोटा या असम्मानका सूचक न समझना चाहिए। आरोग्यता होनेसे–स्वस्थता होनेसे ही धर्मसाधन हो सकता है। अतएव इस विषयकी शिक्षा खास तौरसे प्रचलित की जानी चाहिए। स्वास्थ्यरक्षाके मोटे मोटे नियमोंका ज्ञान सबको करा देना चाहिए। कोई रोग ऐसा नहीं, जो उचित उपाय करनेसे रोका न जा सके। यूरोपवासियोंने प्लेग, हैजा, चेचक आदि रोगोंको अपने देशसे सर्वथा निकाल दिया है। निर्बलता तरह तरहके रोगोंको बुलानेकी निमंत्रणपत्रिका है। डाक्टर लोग कहते हैं कि क्षयरोग (तपेदिक) के कीड़े सभी मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं, परन्तु वे तबतक हानि नहीं पहुँचा सकते, जबतक शरीर बलवान् रहता है। मनुष्य दुर्बल हुआ कि, इन्होंने उसे यमलोकको भेज देनेका प्रयत्न किया। अन्य रोगोंके कीड़ोंका भी यही हाल है। बाल्यविवाह कादि कुप्रथायें भी निर्बल मनुष्यों पर अधिक हानिकारक प्रभाव डालती हैं। यही कारण है, जो १९०१ से १९११ तक दश वर्षोंमें बाल्यविवाहोंके कुछ कम हो जाने पर भी जैनियोंका क्षय पहलेसे भी अधिक हुआ है। क्योंकि इन दश वर्षोंमें लोग पहलेसे अधिक दुर्बल और वीर्यहीन हो गये हैं। लेखकको विश्वास है कि यदि लोग अपने स्वास्थ्यकी ओर ध्यान देना आरंभ कर दें, व्यायाम करें, और तरह तरह के परिश्रमके काम करें, तो जैनियोंका क्षय बहुत कुछ रुक जावेगा। बलवान् दीर्घायु सन्तान होगी, मृत्युयें *कम होंगी, रोग कम सतावेंगे और स्त्रियोंकी संख्या* पुरुषोंसे कम न रहेगी।

जैसा कि आगे बतलाया जायगा जैनसमाजमें स्त्रियोंकी संख्या कम है और इसका कारण यह है कि, हमारे यहाँ लड़कियाँ और स्त्रियाँ लड़कों और पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक मरती हैं। मरें क्यों नहीं? उनके स्वास्थ्यकी ओर ध्यान ही कहाँ दिया जाता है। उनके साथ बुरा वर्ताव किया जाता है, वे स्वास्थ्यनाशक पर्दमें रक्खी जाती हैं, बचपनमें माता बना दी जाती हैं और बीमार होने पर उनकी दवादारूका यथेष्ट प्रयत्न नहीं किया जाता। मनुष्य जातिके लिए यह बहुत ही लज्जाकी बात है कि वह अपने एक अंगको इतना तुच्छ समझता है और दूसरे अंग पर अपना सर्वस्व न्योछावर करके भी सन्तुष्ट नहीं होता।

४ **बाल्य-विवाह**। प्राचीन समयमें इस देशमें विवाह उस समय होता था, जब वर कन्या दोनों यौवनावस्थाको प्राप्त हो जाते थे और विवाहके उद्देश्यको समझने लगते थे। इधर देशकी परिस्थितियोंमें बड़े बड़े परिवर्तन होनेसे कोई ४००–५०० वर्षसे यह बाल्यविवाहकी प्रथा चल पड़ी है। इस प्रथाने देशको बड़ी भारी हानि पहुँचाई है। यदि यह न होती तो आज युक्त प्रान्तमें पन्द्रह वर्षसे कम उम्रकी १,२५९ जैनविधवाओंकी हृदयविदारिणी संख्या सुननेका दिन न आता।

चौथे कोष्टकको देखनेसे मालूम होगा कि युक्तप्रान्तमें सन् १९११ में ५ वर्षसे कम उम्रकी विवाहिता जैन लड़कियाँ २८, पाँचसे १० वर्ष तककी २५२ और १० से १५ तककी १३९३ थीं। इसी तरहसे ५ वर्षसे कमके विवाहित लड़के १५, पाँचसे १० तकके १८१,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दशसे १५ तकके ७६२ और १५ से २० तकके १७०५ थे।

इस बाल्यविवाहसे जो हानि होती है, उसका पता इलाहाबाद, कानपुर, बनारस आदि नगरोंकी जैनजनसंख्याकी घटीसे-जो १९०१ से १९११ तक दश वर्षोंमें हुई है-लगेगा। जैनियोंकी संख्या कम हो जानेका कारण प्लेग भी है, परन्तु प्लेगने जैनियोंको हिन्दुओं और मुसलमानोंकी अपेक्षा अधिक सताया होगा, यह बात ध्यानमें नहीं आ सकती। क्योंकि जैनी अन्य लोगोंकी अपेक्षा अधिक धनी हैं, इस कारण ये अपनी रक्षा भी अधिक कर सकते हैं। जैनी और लोगोंकी अपेक्षा बहुत ही घटे हैं। इसके कारण अवश्य ही कुछ और हैं। इन नगरोंके जैनियोंमें विवाहके समय कन्याकी आयु दश ग्यारह वर्षकी और वरकी तेरह चौदह वर्षकी होती है। विवाहके पश्चात् प्राय एक ही वर्षके भीतर दोनोंका संयोग होने लगता है। मेरठ कमिश्नरीकी हालत कुछ अच्छी है। वहाँ साधारणतः विवाहके समय कन्याकी आयु १२ वर्षकी और वरकी १५-१६ वर्षकी होती है। विवाहके २-३ वर्ष बाद गोना होता है और तब दोनोंका संयोग होता है। इससे वहाँ बाल्यविवाहने कम हानि पहुँचाई है।

बाल्यविवाहसे स्त्री-पुरुष दुर्बल, शक्तिहीन, निस्तेज, रोगी और सुखहीन हो जाते हैं। इनको बहुत ही थोड़ी आयु प्राप्त होती है। ३५-४० वर्षकी उम्रमें ही ये बूढ़े हो जाते हैं। इस देशमें क्षय रोगकी वृद्धि इसी कारणसे हो रही है। लड़कियोंको बाल्यविवाहसे बहुत ही हानि होती है। वे थोड़ी ही उम्रमें गर्भ धारण कर लेती हैं और प्रसवके समय या तो मर जाती हैं, या कठिनाईसे बचकर जीवन भर दुख भोगती हैं।

बाल्यविवाह शिक्षाप्रचारके मार्गमें भी बड़ी रुकावट डालता है। लड़कियोंका विवाह हुआ कि उनका पढ़ना लिखना समाप्त हो गया। इधर घरमें बहू आई कि लड़केका मन पढ़नेसे हटने लगा। दोनोंका ही ज्ञान अधूरा रह जाता है। न वह संसार चलानेके योग्य होती है और न यही अपनी यथेष्ट उन्नति कर सकता है।

सन् १९११ की गणनाके अनुसार सारी जैन-विधवाओंकी संख्या १,५३,२९७ और युक्त-प्रान्तकी विधवाओंकी ८,०१२ है। ये सब उम्रकी विधवायें हैं। इनमेंसे १५ वर्षसे कम उम्रकी सारे देशमें १,२५९ और युक्त प्रान्तमें ६४ हैं। यह उन विधवाओंकी संख्या है, जिनकी उम्र मनुष्यगणनाके समय १५ वर्षसे कम थी; पर १५ वर्षसे कम उम्रमें विधवा होनेवाली स्त्रियोंकी संख्या इससे बहुत अधिक होगी। हमारी समझमें सारी विधवाओंका सातवाँ हिस्सा ऐसा होगा, जिसे इस उम्रके पहले वैधव्य प्राप्त हो गया है। अर्थात् सारे भारतमें २० हजारसे अधिक और युक्त प्रान्तमें एक हजारसे अधिक जैन विधवायें ऐसी हैं, जो १५ वर्षसे पहले विधवा हो गई हैं।

साधारणतः कन्याओंका विवाह १०-१२ वर्षके भीतर हो जाता है। इस वयमें और १५ वर्षमें लगभग ४ वर्षका अन्तर होगा। भारतवर्षकी आयुका परिमाण साधारणतः (औसत दर्जा) २२ वर्ष है। इसमें छोटे छोटे बच्चोंकी आयु भी शामिल है। यदि हम ११ वर्षसे अधिक उम्रके मनुष्योंकी उम्रका हिसाब लगाकर औसत उम्र निकालें तो वह २७ या २८ वर्ष आवेगी। इस लिए १५ वर्षसे कम उम्रमें विधवा होनेवाली स्त्रियोंकी संख्या समस्त भारतकी जैन विधवाओंकी संख्याका $\frac{1}{7}$ अर्थात् सातवाँ भाग होगी और इसी लिए हमने ऊपरके पैरेमें यह बात कही है।

यह संख्या बड़ी ही भयानक है। इन बाल-विधवाओंकी दशाका विचार करके हमें जैसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बने तैसे बाल्यविवाह बन्द कर देना चाहिए । यदि कन्याओंका विवाह १५ वर्षसे कमकी आयुमें न होता तो जैनियोंमें २० हजार विधवायें न होतीं । वे सधवा रहकर कमसे कम ४० हजार मनुष्य उत्पन्न करतीं, जिससे जैनियोंका नाश बहुत कुछ रुक जाता। लड़कियोंका विवाह १५ वर्षसे पहले और लड़कोंका २० वर्षसे पहले कभी मत करो । इसके पहले दोनोंमें ही उत्तम सन्तान उत्पन्न करनेकी योग्यता नहीं आती ।

५ वृद्धविवाह । जैनसमाजमें कन्याओंकी संख्या बहुत ही कम है । इससे हजारों नवयुवकोंको यों ही कुँआरा रहना पड़ता है । उस पर ये बूढ़े लोग अपनी कई कई शादियाँ करके और भी उनका हक मार देते हैं । जो कन्या किसी युवकसे शादी करके सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती, और अनेक पुत्र कन्याओंकी माता होती, वही एक बूढ़े खूसटके पंजेमें फँसकर दुःखोंके पाले पड़ती है, सन्तानहीन या रोगी सन्तानकी माता होती है और शीघ्र ही विधवा बनकर समाजमें दुराचारोंकी वृद्धि करती है । इस लिए वृद्धविवाहकी दुष्प्रथाको शीघ्र ही बन्द करना चाहिए । इसके लिए पंचायतियोंको यत्न करना चाहिए । पंचायतियोंकी शक्तिको बढ़ाना हम लोगोंके हाथमें है ।

६ व्यभिचार । युक्तप्रान्तके अन्य समाजोंकी तरह जैनसमाजमें भी व्यभिचारका बेशुमार प्रचार हो रहा है । ज्ञात होता है कि शीलव्रत इस समाजसे बिदा ले चुका है और जैनधर्मका प्रभाव इसके हृदयसे बिलकुल उठ गया है । यह समाज केवल ऊपरसे जैनधर्मका अंगा पहने हुए है; जिसके भीतर इसका हृदय छुपा हुआ है । इसकी भीतरी हालत बड़ी ही गंदी है । इस व्यभिचारके रोगमें यहाँके युवा ही ग्रसित नहीं हैं, बालक और बूढ़े भी इसके पंजेसे बाहर नहीं हैं । यहाँके बालक ७–८ वर्षके होते ही अश्लील शब्दोंको सुन सुनकर उनके उच्चारण करनेमें पटु हो जाते हैं । पहले तो वे उनका भाव समझे विना ही उच्चारण करते रहते हैं, पीछे १२–१३ वर्षके लगभग पहुँचने पर उन अश्लील शब्दोंके द्वारा उत्पन्न हुए भावोंको प्रयोगमें लानेकी चेष्टा करने लग जाते हैं । उनकी यह चेष्टा अनंगक्रीड़ा, हस्त–मैथुन आदि दुष्ट दोषोंके रूपमें प्रकट होती है । व्यभिचारकी यह पहली सीढ़ी है । बाल्यावस्थामें ये भाव अनंगक्रीड़ा आदिके रूपमें और युवावस्थामें परस्त्रीसेवन, वेश्यागमन आदिके रूपमें प्रकट होते हैं । जहाँ ये भाव हृदयमें अंकित हो पाये कि फिर निकाले नहीं निकलते । ये उन्हें सदाके लिए व्यभिचारी बना देते हैं । स्त्रियाँ भी जब अपने पुरुषोंको परस्त्रीगामी या वेश्यागामी बना हुआ देखती हैं, अपने पातिव्रत्यसे शिथिल होने लगती हैं और अन्तमें दुराचारिणी बन जाती हैं ।

यह व्यभिचार भी हमारी संख्याके क्षयका बड़ा भारी कारण है । इलाहाबाद, अलीगढ़, सहारनपुर, आदि नगरोंकी संख्या १९०१ से १९११ तकके दश वर्षोंमें बहुत कम गई है । वास्तवमें इनकी संख्या बढ़नी चाहिए थी । क्योंकि लोगोंकी प्रवृत्ति गाँवों और कस्बोंको छोड़ छोड़कर शहरोंमें जा बसनेकी ओर बढ़ रही है । व्यापारादिके निमित्तसे जैनी लोग शहरोंमें ही अधिक बसते जाते हैं । परन्तु व्यभिचारने संख्याको बढ़ानेके बदले घटाया है । यह सभी जानते हैं कि, व्यभिचारी स्त्रीपुरुषोंके एक तो संतान ही नहीं होती और यदि होती है तो निर्बल, रोगी और अल्पायु होती है । व्यभिचारी पुरुष स्वयं भी निर्बल, निस्तेज, साहसहीन, रोगी और अल्पायु हो जाते हैं । मूत्र रोग तो उन्हें घेरे ही रहते हैं । स्त्रियोंकी भी यही दशा होती है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस बढ़े हुए व्यभिचारको रोकनेकी ओर शीघ्र ही ध्यान देना चाहिए। बच्चोंके चरित्र पर छुटपनसे ही बल्कि उनके गर्भमें आनेके समयसे ही दृष्टि रखनी चाहिए। बच्चे जब माताके गर्भमें आते हैं, तभीसे उनपर माताके बुरे भले विचारोंका प्रभाव पड़ता है। यदि माताके विचार अच्छे होंगे तो बच्चे उन्हें अपनी प्रकृति बनाकर जन्म लेंगे। इसके बाद उन पर अच्छे संस्कार डाले जायँगे, उनके कानोंमें सदैव अच्छे विचार पड़ते रहेंगे, उनकी दृष्टिपथमें सदैव अच्छे कार्य पड़ते रहेंगे और वे अच्छे आदर्शोंकी ओर झुकाये जायँगे, तो उनके सदाचारी होनेमें कोई सन्देह नहीं। आगे उन्हें विद्याध्ययन कराया जाय, नैतिक शिक्षा दी जाय, और कर्तव्यशील बनाया जाय, तो उनका जीवन बड़ी उत्तमतासे व्यतीत होगा।

व्यभिचारी स्त्रीपुरुषोंको सदाचारी बनानेके लिए सुशिक्षाका प्रचार, अच्छा उपदेश, अच्छे अच्छे ग्रन्थोंका अध्ययन, अच्छी संगति, सामाजिक शासन आदि अनेक उपाय हैं, जिनका वर्णन इस छोटेसे लेखमें नहीं हो सकता। उनकी ओर भी ध्यान देना चाहिए।

७ पुरुषोंका अविवाहित रह जाना और कन्याओंकी कमी। चौथे कोष्टकको देखनेसे मालूम होगा कि सन् १९११ में युक्तप्रान्तमें २५ वर्षसे अधिक उम्रके पुरुषोंकी संख्या १९,१०८ थी और उनमें ३,५३६ पुरुष ऐसे थे, जो अविवाहित थे। जैनसमाजमें पुरुषोंका ब्याह २५ वर्षसे कमकी ही उम्रमें हो जाता है; अतएव २५ वर्षसे अधिक उम्रके कुँआरे पुरुष वे ही होते हैं, जिनके ब्याहे जानेकी बहुत ही कम आशा होती है। इन अविवाहित पुरुषोंकी औसत प्रति सैकड़े १८.५ पड़ती है। लगभग यही औसत २५ वर्षसे कम उम्रके पुरुषोंमें भी अविवाहितोंकी होगी। २५वर्षसे कम उम्रके पुरुषोंकी संख्या २१,७०० है, अतः इनमें भी प्रति शत १८.५ के हिसाबसे कोई चार हजार पुरुष अविवाहित रह जायँगे। इस तरह कुल ४०,८९५ पुरुषोंमेंसे ७,५०० पुरुष ऐसे हैं, जिनका विवाह नहीं हुआ और न होनेकी आशा है। ये वे पुरुष नहीं हैं जिन्होंने ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके अविवाहित रहना स्वीकार किया है; किन्तु ये वे हैं, जिनके विवाह हो नहीं सकते। इस तरह जैनसमाजके पुरुषोंका पाँचवाँ हिस्सा अविवाहित रह जाता है। यदि इनका विवाह हो गया होता और इनके सन्तान उत्पन्न होती तो युक्त प्रान्तके जैनियोंमें सन् १९११ में जो ९ हजार मनुष्योंकी कमी हुई है वह न होती; उलटी कुछ वृद्धि ही होती।

जैनसमाजके एक पंचमांश पुरुषोंके अविवाहित रहनेके नीचे लिखे कारण हैं:—

१ स्त्रियोंकी कमी। युक्त प्रान्तमें सन् १९११ की गणनाके अनुसार पुरुषोंकी संख्या ४०,८९५ और स्त्रियोंकी ३४,५९२ थी। अर्थात् स्त्रियाँ पुरुषोंसे ६३०० कम थीं। इनमें कुछ अजैन स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं। क्यों कि बहुतसे स्थानोंमें अग्रवाल आदि जातियोंके लोग अजैन लड़कियोंको ब्याह तो लाते हैं; पर अपनी लड़कियोंको अजैनोंमें नहीं देते। यदि ये अजैन स्त्रियाँ जैनोंमें सम्मिलित न होतीं तो यह स्त्रियोंकी कमी ७००० के लगभग हो जाती। अब प्रश्न होता है कि स्त्रियाँ पुरुषोंसे कम क्यों हैं? क्या लड़कियाँ लड़कोंसे कम उत्पन्न होती हैं, या लड़कोंसे अधिक मर जाती हैं? और यदि अधिक मरती हैं तो क्यों?

चीन, जापान, भारतवर्ष, अमेरिका आदि पूर्वीय देशोंमें लड़कियाँ लड़कोंकी अपेक्षा कुछ कम उत्पन्न होती हैं; (इँग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी आदि पाश्चिमीय देशोंमें अधिक उत्पन्न होती हैं।) परन्तु यह कमी हजार पीछे १५ के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगभग ही होती है। इस हिसाबसे जब युक्त प्रान्तमें ४०,९०० पुरुष हैं, तब स्त्रियोंकी संख्या ४०,२०० होनी चाहिए थी; परन्तु वह है ३४,५९५, अर्थात् पूर्वीय देशोंकी प्रकृतिके लिहाजसे भी यहाँ ५,७०० स्त्रिया कम हैं, जिसके कि कारण कुछ और ही हैं।

यहाँ पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ मरती अधिक हैं। मनुष्यगणनाकी रिपोर्टमें लिखा है कि, पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी अधिक मृत्युके कारण उनसे बुरा वर्ताव करना, अधिक काम लेना, उनका अनादर, उनमें स्वास्थ्यनाशक पर्देका होना, उनका बालकपनमें विवाह होना और बचपनमें ही गर्भवती हो जाना, आदि हैं। विचार करके देखा जाय, तो ये कारण बहुत अंशोंमें सच हैं। स्थानसंकोचके कारण इन सब कारणों पर विस्तारसे नहीं लिखा जा सकता।

२ पुरुषोंका बारबार विवाह करना और विधवाविवाहका न होना। चौथे कोष्टकको देखनेसे मालूम होगा कि, सन् १९११ में युक्त-प्रान्तमें ४,७६९ रँडुए और ८,०१२ विधवायें थीं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि, विधवाओंसे रँडुए इतने कम क्यों? दोनोंकी संख्या बराबर होनी चाहिए थी। इसके दो कारण हो सकते हैं—एक तो यह कि पुरुष स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक मरते हों। ऐसा होनेसे परलोवासी पुरुषोंकी स्त्रियाँ (विधवायें) परलोकवासिनी स्त्रियोंके पतियों (रँडुओं) से अधिक होंगी। दूसरा यह कि रँडुए दोबारा विवाह कर लेते हों और रँडुओंकी श्रेणीमेंसे निकलकर विवाहितोंकी श्रेणीमें आ जाते हों और इस तरह रँडुओंकी संख्या कम हो जाती हो। सरकारी रिपोर्टमें यह अच्छी तरहसे दिखा दिया गया है कि, इस प्रान्तमें स्त्रियाँ ही अधिक मरती हैं, अतएव विधवाओंकी अपेक्षा रँडुओंकी कमीका उक्त पहला कारण नहीं माना जा सकता, दूसरा ही होगा। अर्थात् रँडुए दोबारा शादी कर लेते हैं। और विवाहितोंमें गिन लिये जाते हैं।

इस प्रान्तमें रँडुए ४,७६९ और विधवायें ८,०१२ हैं, अर्थात् रँडुए विधवाओंसे ३,२४३ कम हैं। रँडुए विधवाओंसे अधिक होने चाहिए थे, क्योंकि स्त्रियाँ पुरुषोंसे अधिक मरती हैं, अतएव यह कमी वास्तवमें ३,५०० के लगभग होगी। अर्थात् यहाँके ३,५०० रँडुओंने दोबारा ब्याह कर लिया है और वे विवाहित गिने जाते हैं।

यदि ये ३,५०० रँडुए दूसरी बार ब्याह न करते तो ३,५०० कन्यायें बचजातीं और इनका ब्याह ३,५०० अविवाहित पुरुषोंके साथ होता। दोबारा विवाह करनेवाले अधिकतर धनवान् पुरुष ही होते हैं। निर्धनोंका एक ही विवाह कठिनतासे होता है, फिर दूसरे ब्याहकी तो आशा ही क्या की जा सकती है। इन दोबारा ब्याह करनेवाले धनवानोंमें बहुतसे पुरुष ऐसे होंगे जिन्हें विवाहके सर्वथा अयोग्य समझना चाहिए। उनसे सन्तानोत्पत्तिकी आशा कदापि नहीं की जा सकती। इस तरह इन्हें जनसंख्याके घटानेके बहुत बड़े कारण गिनना चाहिए।

युक्तप्रान्तमें ८,०१२ विधवायें हैं। यदि इनमेंसे वे विधवायें जो विवाह करनेके योग्य हैं, पुनर्विवाह कर लें तो इतने अधिक पुरुष अविवाहित न रहें और जनसंख्याका ह्रास अनेक अंशोंमें रुक जावे। पर प्रश्न यह है कि, क्या जैनसमाजके लिए विधवाविवाहका प्रचार करना श्रेयस्कर होगा? भय है कि इसके जारी होनेसे स्त्रीसमाजके सामनेसे एक उच्च आदर्श जाता रहेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वृद्धविवाह, कन्याविक्रय और धनका दासत्व भी अधिक पुरुषोंके अविवाहित रहनेके कारण हैं। इनके कारण अयोग्यों और धनियोंके तो अनेक विवाह हो जाते हैं, पर बहुतसे सुयोग्यों और निर्धनोंका एक भी नहीं होने पाता। धनके लोभसे लोग स्त्रियोंके असली सुख 'सुयोग्य पति' के महत्त्वको भूल गये हैं।

८ जैनसमाजमें छोटी छोटी जातियोंका होना और अपनी जातिके अतिरिक्त अन्य जातियोंके साथ ब्याह न करना। जैनसमाजमें ऐसी बहुत सी जातियाँ हैं, जिनकी जनसंख्या ५०० से भी कम है। नीचे लिखे कोष्टकको देखिए। यह 'दिगम्बर जैन डिरेक्टरी' से उद्धृत किया गया है:—

जाति	युक्त-प्रान्त	सी. पी.	राज-पूताना मालवा	पंजाब	बम्बई	बंगाल विहार	मद्रास मैसूर	कुल
खंडेलवाल	३५६२	१२९३	५३१३२	६१६	४८१४	१३०८	१	६४७२६
अग्रवाल	२७६५२	३९३	१३५०३	२३३४६	५९६	१७३१	०	६७१२१
जैसवार	३३००	८६	५९१२	२०३	१०५८	३२१	११५	११०८९
परवार	९५४५	२३५१९	९६८१	१०	१८८	१३४	५९	४१९९६
पद्मावती परवार	८७४४	१४६	२२९७	३५३	१२	३०	९	११५९१
पल्लीवाल	३७५२	५७	४२२	०	०	११	०	४२७२
गोलालारे	२०९५	१९००	१५६२	०	२	२०	०	५५८२
त्रिनैकया	६	३२२५	४२२	०	२	०	०	३६०५
ओसवाल	१८	०	१२२	१७९	३८३	०	०	७०२
गंगेरवाल	१३६	६३६	०	०	०	०	०	७७२
बड़ेले	१६	०	०	०	०	०	०	१६
बरैया	५९	०	१५१२	०	०	१३	०	१५८४
फतहपुरिया	१३५	०	०	०	०	०	०	१३५
पोरवाड	१२५	०	०	०	०	०	०	१२५
बुढ़ेले	५५८	०	०	८	०	०	०	५६६
लोहिया	५५०	०	५२	०	०	०	०	६०२
गोलसिंघारे	३२९	२४	२५८	०	०	१८	०	६२९
खरौआ	९८०	०	७२०	०	०	५०	०	१७५०
लमेचू	१६२२	२१८	१००	०	८	२९	०	१९७७
गोलापूरव	७१८	९४७६	३७६	०	७०	०	०	१०६४०

इस कोष्टकमें पाठक देखेंगे कि, युक्त प्रान्तमें गंगेरवाल, बड़ेले, बरैया, पोरवाल आदि कितनी ही जैन जातियाँ ऐसी हैं जिनकी संख्या ५०० से कम है और जो समग्र भारतमें भी १००० से कम हैं। दिगम्बर जैन डायरेक्टरीसे विदित होता है कि, केवल दिगम्बर सम्प्रदायमें ४१ जातियाँ ऐसी हैं; जिनकी जनसंख्या ५०० से कम है; १२ ऐसी हैं, जिनकी संख्या ५०० से १००० तक है; २० ऐसी हैं, जिनकी १००० से ५००० तक है और १२ जातियाँ ऐसी हैं, जिनकी संख्या ५००० से अधिक है। इनके अतिरिक्त ऐसी भी कई जातियाँ हैं, जिनकी संख्या २० से लेकर २०० तकके बीचमें है। ऐसी जातियाँ बड़े वेगसे कम हो रही हैं। ये दश वर्षमें आधी या एकतिहाई हो जाती हैं। कुछ जातियोंका पता सरकारी रिपोर्टसे उद्धृत किये हुए नीचे लिखे कोष्टकसे लगेगा:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाति	सन् १८९१		सन् १९११	
	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
खंडेलवाल	१०४८	९३७	४७३	६३
ओसवाल	६८३	५४४	२२४	२०
अग्रवाल	२१११६	१७४००	१८६५०	१५१४

इससे मालूम होगा कि २० वर्षमें खंडेलवाल आधे हो गये, ओसवाल और भी कम हो और अग्रवाल प्रति शत १२ कम हो गये। अग्रवाल जातिकी जनसंख्या अधिक है, इस कारण उसकी कमी सैकड़ा पीछे केवल १२ हुई जब कि ओसवालों और खंडेलवालोंकी क्षति बहुत अधिक हुई है। क्योंकि इनकी संख्या युक्तप्रान्तमें बहुत कम है।

इन जातियोंकी अधिक क्षतिका कारण यह है कि इनमें विवाह बड़ी कठिनाईसे होते हैं। विवाहका क्षेत्र छोटा होनेसे और गोत्र आदिकी अधिक झंझटोंसे प्रायः बेमेल विवाह करना पड़ते हैं और इस प्रकारके विवाहोंसे जनसंख्याकी वृद्धिमें कितनी रुकावट पड़ती है, यह बतलानेकी जरूरत नहीं है।

बड़ी जातियाँ धीरे धीरे घटती जाती हैं और घटते घटते छोटी हो जाती हैं। इसके बाद उनका क्षय होना शुरू होता है और अन्तमें वे नामशेष हो जाती हैं। जो जाति जितनी छोटी है, विवाहसंबन्ध करनेमें वह उतना ही अधिक कष्ट भोगती है और नाशके सन्मुख भी उतने ही शीघ्र जाती है।

हमारी समझमें इधरकी तमाम जैनजातियोंमें पारस्परिक विवाह होने लगना बहुत कल्याणकर होगा। इसमें न तो धार्मिक दृष्टिसे कोई हानि है और न सामाजिक दृष्टिसे। जैनशास्त्र इसका निषेध नहीं करते, वरन् उनमें तो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जैसे जुदा जुदा वर्णोंमें भी बेटीव्यवहार करनेकी आज्ञा है। इधर जितनी जैन जातियाँ हैं, वे सब वैश्य वर्णकी हैं। उनमें पहले भले ही कोई क्षत्रिय रही हों, परन्तु इस समय तो व्यवसायके कारण वे सभी वैश्य हैं। इन एक वर्णकी जातियोंके पारस्परिक सम्बधको कोई भी धर्मशास्त्र बुरा नहीं बतला सकता। जिन जातियोंमें एकसा व्यवसाय होता है, जिनका खानापीना रहनसहन एकसा है और जिनके धार्मिक सांसारिक विचार एकसे हैं, उनके पारस्परिक सम्बन्धमें सामाजिक दृष्टिसे भी कोई हानि संभव नहीं हो सकती। लाभ अवश्य ही अगणित होंगे। विवाह करना बहुत सुगम हो जायगा, कन्याओंके लिए योग्य वर मिलने लगेंगे, किसीको अपनी कन्यायें लाचार होकर रोगी, दुर्बल, बूढ़े पुरुषोंको न देनी पड़ेंगी, अनमेल और अनुचित विवाहोंसे होनेवाली मौतें न होंगी, आरोग्य और दीर्घजीवी सन्तान अधिक उत्पन्न होगी और छोटी छोटी जातियाँ नाशसे बचकर फिर अपने समूहको बढ़ानेमें समर्थ होंगी।

कुछ समय पहले मलकापुरके पोरवाड़ोंने मालवा और नीमाड़के पोरवाड़ोंको एक पत्र लिखा था। ये दोनों एक ही पोरवाड़ जातिकी शाखायें हैं, जिनका विवाहसम्बन्ध देशभेदके कारण किसी समयमें बन्द हो गया है। पत्रका सारांश यह है कि हमारी संख्या इतनी कम हो गई है कि, अब हमको अपनी पुत्रियोंको ठिकाने लगाना कठिन हो गया है। अब या तो हमारी कन्यायें कुँआरी रहेंगी, या उनका सम्बन्ध हमें अपने समीपके रिश्तेदारोंके साथ अनुचित रीतिसे करना होगा और या उन्हें अजैनोंको देना होगा। यदि आप लोग हमारे साथ विवाहसम्बन्ध शुरू कर दें तो हमारा उद्धार हो जाय। यही दशा हमारी और भी अनेक जातियोंकी हो रही है। उन्हें नाशसे बचानेके लिए इस पारस्परिक विवाहसे बढ़कर और कोई उपाय नहीं है।

(शेष आगे।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयुक्तप्रान्तकी जिलेवार जैन-संख्या।

		१८९१		१९०१		१९११	
		पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ
संयुक्त प्रान्त		४४३३४	३७८००	४४२२७	३७९९०	३९९५०	३३७६०
मेरठ कमिश्नरी		१९७२२	१६१६३	२०५७८	१७३६३	१८६५३	१५३८८
१ देहरादून	ज़िला	१६१	७३	१९०	११३	१८८	१३२
२ सहारनपुर	,,	३३२५	२७५९	३०८९	२५९९	२३८८	२०६३
३ मुजफ्फरनगर	,,	५२५५	४१४१	५६१७	४५१७	४४६९	३६९४
४ मेरठ	,,	८९९३	७३८७	९११८	७८१२	९३३०	७६०५
५ बुलन्दशहर	,,	६७१	६१३	७८३	७५८	७१४	६३७
६ अलीगढ़	,,	१३१७	११९०	१७८१	१५४८	१५६४	१२६७
आगरा कमिश्नरी		१६१६५	१३५७०	१५३३८	१२८६७	१३१२२	१०८७५
७ मथुरा	ज़िला	१२९२	१११९	१३७१	११४७	७९६	६६१
८ आगरा	,,	७३०६	६१५६	७०१९	५९३४	६१००	५११०
९ फर्रुखाबाद	,,	५३७	५११	३७९	३६२	२७२	२२८
१० मैनपुरी	,,	३१८८	२५७२	२९५८	२३६०	२५६९	२०३६
११ इटावा	,,	११७८	८३९	१२५६	१०८१	१०६४	८६९
१२ एटा	,,	२६६४	२२८१	२३५५	१९८९	२३२१	१९७१
रुहेलखंड कमिश्नरी		१२१३	१०६७	१०९६	९२०	१०२८	९१२
१३ बरेली	ज़िला	२	२	६७	३१	३	०
१४ बिजनौर	,,	५२६	४७२	५६१	४६८	४७६	४४९
१५ बदायूँ	,,	१२९	१००	४४	७३	१२१	७६
१६ मुरादाबाद	,,	५३२	४७०	३६१०	३३२	४१०	३७५
१७ शाहजहाँपुर	,,	२०	१६	१७	१४	१५	१२
१८ पीलीभीत	,,	४	७	२	२	३	४
इलाहाबाद कमिश्नरी		६९४०	६७५२	६७७८	६४६२	६८२८	६११२
१९ कानपुर	ज़िला	२४५	१७०	३८९	३२९	२६०	१६३
२० फतेहपुर	,,	४५	३८	३२	४२	४१	४०
२१ बाँदा	,,	१३४	१५०	१७७	१८५	१४१	१५९
२२ हमीरपुर	,,	५५	५२	३५	२४	४१	४४
२३ इलाहाबाद	,,	२७२	२९६	५९३	६७१	३२१	३१६
२४ झाँसी व ललितपुर	,,	१३३४ ४७६५	११८७ ४७८१	५५०४	५२५६	५८८१	५४८८
२५ जालौन	,,	९०	७८	७८	५५	१४३	१२३
बनारस कमिश्नरी		२४१	२११	३२०	२९५	२४८	१९७
२६ बनारस	ज़िला	८६	५२	१९८	१८२	१७०	१३१
२७ मिर्ज़ापुर	,,	१३४	१४७	११६	१०९	७०	६१
२८ जौनपुर	,,	४	२	०	०	७	५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	१८९१ पुरुष	१८९१ स्त्रियाँ	१९०१ पुरुष	१९०१ स्त्रियाँ	१९११ पुरुष	१९११ स्त्रियाँ
२९ गाज़ीपुर ,,	१७	१०	३	३	१	०
३० बलिया ,,	०	०	३	१	०	०
गोरखपुर कमिश्नरी	२६	१८	५५	६८	३२	२७
३१ गोरखपुर ज़िला	२६	१८	४७	५८	३०	२७
३२ बस्ती ,,	०	०	४	३	२	०
३३ आजमगढ़ ,,	०	०	४	७	०	०
कमायू कमिश्नरी	२७	१९	६२	१५	३९	१८
३४ नैनीताल ज़िला	४	१	२२	१८	१४	६
३५ अलमोड़ा ,,	१	१	१	१	०	०
३६ गढ़वाल ,,	२२	१७	३४	२६	२५	१२
अवध प्रान्त	१२९०	११७७	११२३	१०३१	९४५	७७२
लखनऊ कमिश्नरी	५७५	५१०	५३४	४८५	४८५	३७१
३७ लखनऊ ज़िला	४१९	३७८	३३७	३३१	२९३	२४३
३८ उन्नाव ,,	४	४	६	२	६	१
३९ रायबरेली ,,	१०	१३	२८	१८	२१	११
४० सीतापुर ,,	१२६	१०८	१४६	११५	१४९	१०५
४१ हरदोई ,,	८	५	८	७	९	७
४२ खेरी ,,	८	२	९	१२	७	४
फैज़ाबाद कमिश्नरी	७१५	६६७	५८९	६४६	४६०	४०२
४३ फैज़ाबाद ज़िला ,,	७७	८४	३१	३२	२३	२२
४४ गौंडा ,,	०	०	४	४	२	०
४५ बहरायच ,,	३३	१५	४५	३७	६६	५१
४६ सुलतानपुर ,,	०	०	०	२	९	५
४७ परतावगढ़ ,,	६६	६४	५	३	४२	३९
४८ बाराबंकी ,,	५३९	५०४	५०४	४६८	३१८	२८४
देशी रियासतें	९९	१०३	९३	८८	२७८	१३०
रामपुर रियासत	८७	९५	८९	८६	१४९	११०
टेहरी ,,	१२	८	४	२	२९	२०
संयुक्त देश आगरा व अवध व देशीय रियासतें	४५७२३	३९०८०	४५४४३	३९१३९	४१०७३	३४७२२
हिन्दू	२,०९,५४,९२३	१,९४,२१,२४१	२,१०,२६,२८३	१,९६,६५,५७५	२,०९,४१,६४१	[illegible],११,७२,५१७
मुसलमान	३२,४३,९२२	३१,०२,७२९	३४,३९,८९७	३२,११,१३७	३४,६६,२८७	३१,९२,०५८
ईसाई	३७,२९४	२१,१४७	५१,५५५	४२,११४	१,००,८१८	७७,१३१
आर्यसमाजी	१२,१६४	९,८८९	३६,१५५	२९,१२७	७३,२०२	५७,९५२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोष्टक दूसरा।

जिला	नगर	जैन १९०१ पुरुष	जैन १९०१ स्त्रियाँ	जैन १९११ पुरुष	जैन १९११ स्त्रियाँ	हिन्दू १९०१ पुरुष	हिन्दू १९०१ स्त्रियाँ	हिन्दू १९११ पुरुष	हिन्दू १९११ स्त्रियाँ
देहरादून	देहरादून	१०३	७१	७६	५८	८५९०	५८५७	११६०६	७४१२
सहारनपुर	सहारनपुर	७९२	७४०	७५९	६७३	१४६८९	११६८९	१४८१८	१०२३२
,,	देवबन्द	१८९	१८३	१६५	१५१	४२६९	३६८९	३८२१	३१०३
,,	रूडकी	६७	३०	६९	३२	४४९६	३५४२	४४१२	३०९०
मेरठ	मेरठ	४१२	३१९	४३६	३३७	२१९५९	१७६८०	२०८९३	१६३५०
,,	सरधना	४५८	३९७	४०६	३३०	२७८९	२५६१	२०९९	१७४५
,,	बड़ौत	५३३	४९९	६८०	४९८	२४८०	१९६२	२४८१	१७७२
	बागपत	१८९	१३३	२२४	१८७	२०३०	१५६३	१८१९	१३१५
मुजफ्फरनगर	मुजफ्फरनगर	४५०	२९४	४२१	३०६	७५९९	५२४८	७६०३	५१९२
,,	कैरना	२४६	१८९	२३८	२२१	३९०६	३६८५	३५०३	२७५५
,,	कांधला	३२५	२९९	१४६	१३१	२८३१	२५६९	२०३६	१७५३
बुलंदशहर	खुर्जा	१६२	१४५	१०६	१११	८४१६	७४६२	७८१६	६६६९
,,	सिकन्दराबाद	२१४	२०३	२४४	२१५	५५०५	५०९५	५८०४	४९०३
अलीगढ़	कोयल (अलीगढ)	३२४	२९५	२२८	१५०	२२५५४	१८५२२	१९७५५	१५२५६
,,	हाथरस	३१६	२९४	३१६	२५०	१९५५०	१६५८३	१७५६३	१३६२७
आगरा	आगरा	१९५२	१५३८	१५१५	१२३९	५६६५७	५०७७२	५६७७२	५६७६९
,,	फिरोजाबाद	४०६	३९८	३३६	२९५	५२१०	४६८७	४००६	३४८६
मथुरा	मथुरा	१२२	७४	११३	५८	२३६४०	२०७३४	२३०४५	१९१८८
	कोसी	२५२	२१८	१६७	१३१	२९८१	२५१५	२२९७	१९०४
फर्रुखाबाद	फर्रुखाबाद (फतहगढ)	७१	४८	१०७	९८	२०७५९	१७५७०	२२८९५	२१०५६
मैनपुरी	मैनपुरी	२६५	२०२	२००	१५५	७५८०	६३६५	६५३१	५१५५
इटावा	इटावा	४७६	४०६	५२८	४४८	१५४५८	१३०९५	१५३८२	१३१६२
एटा	जलेसर	१४०	१२१	१२८	९५	४३०८	३५६८	३९६९	३३२९
	एटा	२९४	२२९	१२६	१०५	२८०२	२०३९	२२९६	१६६५
बिजनौर	नजीबाबाद	९९	१०८	६७	६४	४६७०	४६६५	४१५४	३५३८
	बिजनौर	२८	१७	३६	३२	४२३९	३५३९	४३२८	३५५८
बदायूँ	बिलसी	८८	७०	७६	६२	२४१७	२१०४	२२४१	१७०३
मुरादाबाद	मुरादाबाद	१२५	११७	१४६	११७	१६५१४	१४४७२	१६७२४	१३२१६
कानपुर	कानपुर	३२८	२१७	२१२	१३८	७२४२६	५६१३१	६४२१६	४७१४३
बाँदा	बाँदा	१२३	१२७	९९	११०	८००१	८१२७	७५९३	५३२७
इलाहाबाद	इलाहाबाद	२५०	३०४	१५३	१४६	५५७७२	५०५३९	५८६१८	४७२१६
झाँसी	झाँसी	१०९	९८	१५१	१२०	१९१२२	१८०३५	२२४९९	२०९८८
	मानरासपुर	१४६	१६२	५०	४७	७५१९	७७३८	५७८५	५७०९
	ललितपुर	६०५	६०१	६८८	६७७	४२०१	४१०५	४६५४	४१८०
जालौन	कालपी	३६	२०	२६	१३	३५३३	३५६२	३६८०	३६१०
बनारस	बनारस	१७७	१६६	१७५	१३७	७८१५४	७३३३४	१११६१५	१०२२८१
मिर्जापुर	मिर्जापुर	७१	७२	३०	३२	३२६८६	३३३२८	१२९५६	१२०५६
गोरखपुर	गोरखपुर	४०	५१	२५	२७	२१०१८	१९९४२	२०३९५	१७१९७
लखनऊ	लखनऊ	२८०	२७३	२७८	२३२	७४९१७	६५२६०	७५५५५	५८८२६
बहराइच	बहराइच	३२	२३	४९	४१	६९७३	५८६०	६८०२	५४०३
सीतापुर	सीतापुर	२८	७४	२५	५	६५८२	४३६०	७७५७	५०९२
बाराबंकी	बाराबंकी	१७८	२२४	७४	६१	४४३८	३६६३	४५०६	३३४३
रामपुर स्टेट	रामपुर	५७	५०	७२	६१	९१३९	८२३२	७६६७	६७५७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

युक्तप्रान्तमें प्रति दश हजार मनुष्योंमें जैनी कितने थे और उनमें प्रति सैकड़ा कितनी हानिवृद्धि हुई।

विभाग	वर्तमान संख्या सन् १९११ ई.	प्रति दस हजार मनुष्योंमें जैनी कितने हैं				प्रति सैकड़ा हानिवृद्धि कितनी हुई			
		सन् १८८१	१८९१	१९०१	१९११	१८८१ से १८९१ तक	१८९१–१९०१	१९०१–१९११	१८८१ से १९११ तक
पश्चिमी हिमालय। देहरादून, अल्मोडा नैनीताल, गढ़वाल।	३७७	२	२	३	२	+१३·९	+४६·४	−८·०	+५९·०
हिमालयकी पश्चिमी तराई। सहारनपुर, बरेली, बिजनौर, पीलीभीत, खेरी।	५३९३	१८	१७	१६	१२	−३·९	−३·७	−२१·१	−२७·१
गंगाका पश्चिमी मैदान। मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर, अलीगढ़, मथुरा, आगरा, फर्रुखाबाद, मैनपुरी, एटा, इटावा, बदायूँ, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर	५४२८६	४९	५२	४६	४२	+५·८	−८·०	−४·०	−५·२
गंगाका मध्य मैदान। कानपुर, फतहपुर, इलाहाबाद, लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, हरदोई, फैजाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी।	२७२८	२	३	३	२	+६५·९	+१४·२	−३१·३	+३०·२
मध्य भारत। बाँदा, झाँसी, हमीरपुर, जालौन।	१२०२०	५८	५५	५४	५४	−·७	−१०·४	+६·२	−५·५
पूर्वीय सतपुरा मिर्जापुर।	१३१	२	२	२	१	+२०·५	−१९·९	−४१·७	−३४·५
हिमालयकी पूर्वीय तराई। गोरखपुर, बस्ती, गोंडा, बहरायच	१७८	०	१	३	२	+१४८·७	+१३०·४	−११·९	+३८१·१
गंगाका पूर्वीय मैदान। बनारस, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, आजमगढ़	३१४	०	३	१	१	+२३४२·८	+१३३·५	−२१·४	+४३८५·७
टेहरी गढ़वाल रियासत।	४९	०	८	२	१	०	−७०	+७८३१३	+१४५
रामपुर रियासत।	२४५	०	३	३	५	०	−३·८	+४८	+४०
हिन्दू	४०१२३२३८	८६२७	८६१०	८५३२	८५०४	+६१	+·७७	−१·४	+५·४
मुसलमान	६६५८३७३	१३५३	१३५३	१४११	१४११	+७·२	+६·५	−९·१	+१२·३
ईसाई	१७७९४८	११	१२	२१	३८	+२२·६	+७५·३	+७३·७	+२७३·३
आर्य	१३११५४	०	५	१४	२८	०	+१९·६	+१००·९	+४९४·७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आयु	जनसंख्या			अविवाहित		विवाहित		विधुर	विधवायें
	जन	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री		
सम्पूर्ण.	७५,४२७	४०,८९५	३४,५९२	१९,९९९	१०,४७३	१६,१२७	१६,०४७	४,७६९	८,०१२
०–१ वर्ष	२,२२८	१,१५९	१,०६९	१,१५७	१,०६७	२	२	०	०
१–२ ,,	८३८	४१४	४२४	४१३	४२३	१	१	०	०
२–३ ,,	१,६९७	९५३	७४४	९५२	७४२	१	२	०	०
३–४ ,,	१,६१६	८४५	७७१	८३९	७६१	६	७	०	३
४–५ ,,	१,६२६	८९७	७२९	८९१	७११	५	१६	१	१
०–५ ,,	८,००५	४,२६८	३,७३७	४,२५२	३,७०५	१५	२८	१	४
५–१०,,	८,५९१	४,४०७	४,१८४	४,२१७	३,९१४	१८१	२५२	९	१८
१०–१५,,	८,७३३	५,०१७	३,७१६	४,२२४	२,२७७	७६२	१,३८३	३१	४६
१५–२०,,	७,१५९	४,०५९	३,१००	२,२६९	३२६	१,७०५	२,५९२	८५	१८२
२०–२५,,	७,४९८	४,०३६	३,४६२	१,५०१	९५	२,३३४	२,९४२	२०१	४१५
२५–३०,,	६,४५१	३,५९२	२,८०६	१,०८९	४९	२,१९६	२,३०७	३०७	५०३
३०–३५,,	६,०३१	३,७६३	२,८६६	६४५	४०	२१३	२,०३८	४०५	७९०
३५–४०,,	४,३७९	२,४३९	१,९४०	४११	१४	१,६१४	१,३३९	४१४	५८७
४०–४५,,	५,२८३	२,७४०	२,५४३	४८०	२०	१,६८३	१,३५०	५७७	१,१७३
४५–५०,,	३,२०३	१,८८८	१,३१५	३१४	१	१,०९३	६३४	४८१	६८०
५०–५५,,	४,०६०	२,११८	१,९४२	२६६	१३	१,०७५	६१८	७७७	१,३११
५५–६०,,	१,७४५	९९१	७४५	११३	२	४९७	१७६	३८१	५७६
६०–६५,,	२,४९२	१,२१२	१,२८०	१२५	१०	५१०	२२३	५७७	१,०४७
६५–७०,,	७२३	४४४	२७७	५५	१	१७६	४५	२१३	२३१
७० वर्षसे अधिक आयुवाले	११,०७४	५२१	५५३	३८	०	१७२	५४	३११	४९९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोलमालकारिणी सभाके समाचार ।

१

गोलमालकारिणी सभाके अधिवेशन होनेकी अभी तक कोई उम्मीद नहीं । कारण ? नकद नारायणोंकी अकृपा । इनकी कृपाके बिना कोई काम नहीं होता । वे दिन चले गये, जब सभाओंके प्लेटफार्म पर अपील हुई कि रुपयोंकी झड़ी लग गई । अब तो अधिवेशनके खर्चके रुपये भी मुश्किलसे वसूल होते हैं । एक तो अब कोई समझदार सभापति बननेको तैयार नहीं होता । क्योंकि कुछ लोगोंने इस पदकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ा दी है । अमुक सेठजी अमुक जैन सभाके सभापति हुए, इसका अर्थ ही लोग यह करने लगे हैं कि अमुक 'भोला शिकार' अमुक प्रान्तवालोंके पंजेमें जा फँसा । दूसरे, सभापतियोंसे रुपये माँगे जाते हैं । उनके स्वागत आदिमें जो रुपया खर्च होता है, कमसे कम उतना पानेकी आशा तो उनसे लोग करते ही हैं । यदि कोई कंजूस हुआ और कुछ न दे गया, अथवा कम दे गया तो फिर उसकी मिट्टी पलीद की जाती है ।

ऐसी एक दो घटनायें तो अभी हालहीमें हो गई हैं । एक सभापति महाशयके स्वागतमें लगभग ५०० रुपये खर्च किये गये; परन्तु वे चन्दा लिख गये कुल १०१ रुपये ! इस पर लोगोंने उन्हें खूब ही कोसा । ऐसी दशामें अधिवेशनके होनेकी आशा कोसों तक नजर नहीं आती । फिर भी फन्दे लगा रक्खे हैं । यदि कोई चंडूल फँस गया तो देखा जायगा ।

२

अधिवेशनका तो अभीतक कोई प्रबन्ध नहीं हुआ, पर यह सुनकर लोग खुश होंगे कि सभाके आफिसका काम जोरों पर है । कामके मारे क्लर्कोंका नाकों दम है । पत्रोंके उत्तर भी बड़ी मुश्किलसे दिये जा सकते हैं । मध्यप्रदेशके एक धनी मानी सिंगईजीका अभी हालहीमें एक पत्र आया था । उसका सारांश यह है कि "मैं वृद्ध हो गया हूँ । मेरी जिन्दगीका सबसे बड़ा तजरुबा यह है कि मन्दिर बनवाने और रथप्रतिष्ठायें करानेसे ही जैनधर्मकी वास्तविक उन्नति होती है । मैंने इसी प्रकारके ही पुण्य-कार्य करवाके परवार जातिको उन्नतिके शिखर-पर चढ़ा दिया है । मेरे द्वारा बीसों परवार 'सिंगई' और 'सवाई सिंगई' पदसे विभूषित किये गये हैं । ये पदवियाँ 'राय साहब' तथा 'रायबहादुर' के खिताबोंसे जरा भी कम नहीं । मैं चाहता था कि परवारोंमें एक भी कुटुम्ब ऐसा न बचे जो सिंगईके पदसे विभूषित न हो । पर अब अपने वृद्ध शरीरकी तरफ देखनेसे यह विश्वास नहीं होता कि, मेरी यह इच्छा पूरी होगी । क्या आप कोई ऐसी तरकीब बतला सकते हैं, जिससे मेरी उक्त साध पूरी हो जाय?" यह पत्र बहुत ही महत्त्वका समझा गया; इस कारण इसका उत्तर स्वयं गोलमालानन्दजी सभापतिने अपनी कलम शरीफसे लिखा है । उसका सारांश यह है कि, "जबलपुरमें एक बड़ी भारी रथप्रतिष्ठा कीजिए और पत्रोंद्वारा सूचना कर दीजिए कि, जो लोग सिंगई बनना चाहें वे यह अवसर न चूकें । यह गजरथ परवार-मण्डलीकी ओरसे चलनेवाला है । इसके फण्डमें जो भाई कमसे कम पचास रुपये देंगे, वे सिंगई बना दिये जायँगे । रथकी धुरी बहुत ही बड़ी बनवाई गई है जिसको सब लोग पकड़ सकेंगे । जो लोग पहलेके सिंगई और सवाई सिंगई हैं उन्हें धुरी पकड़नेका अधिकार नहीं होगा । इस तरहसे आप एकही वर्षमें हजारों सिंगई बना सकेंगे । आशा है कि आपको यह युक्ति पसन्द आयगी ।" सुनते हैं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिंगईजी इस उत्तरसे बहुत ही खुश हुए हैं। उन्होंने सूचना भी निकाल दी है। सूचनासे परवार समाजमें बड़ी खलबली मची है। जो सिंगई, सवाई सिंगई आदि हैं, उनकी बदहवासीका तो कुछ ठिकाना नहीं है। सुनते हैं, वे इसका प्रतिवाद करेंगे। कोई कोई तो अदालततककी शरण लेना चाहते हैं।

३

एक बिलकुल ही प्राइवेट समाचार है। ऐसे समाचारोंको सर्वसाधारणमें प्रकट करना सभ्यताके खिलाफ है। इसलिए मैं जैनहितैषीके पाठकोंको अच्छी तरह और बारबार सावधान किये देता हूँ कि वे इस खबरको बिलकुल ही गुप्त रक्खें—यहाँ तक कि कोई गैर आदमी पढ़कर सुनानेके लिए भी कहे, तो न सुनावें। सभापति महाशय शास्त्रीय परिषत्के साथ इन दिनों एक बहुत जरूरी मामलेमें पत्रव्यवहार कर रहे हैं। एक पत्रमें लिखा गया है—"आप लोग बहुत ही सुस्त हैं। सालभर होनेको आया, पर आपकी परिषत्ने कोई भी काम नहीं किया। शत्रुदल दिन पर दिन प्रबल होता जा रहा है; पर आपको इसकी जरा भी चिन्ता नहीं है। एक मुख्तार साहबके लेख ही गजब ढा रहे थे कि अब एक वकील साहब और मैदानमें आ डटे हैं। रूसके अजेय किलों पर जर्मनी और आस्ट्रियाकी भयंकर तोपोंने जो काम किया था, वही इनके लेख कर रहे हैं। यदि आपकी दशा रूसके ही समान रही, तो इन अन्धश्रद्धाकी दीवालोंका पता भी नहीं लगेगा कि कहाँ गईं। एक तो रूसकी प्रजा जिस तरह जारके शासनसे असन्तुष्ट थी, उसी तरह आप लोगोंकी इस कुंभकरण जैसी छैंह छह महीनेकी नींद और आराम तलबीसे लोग प्रसन्न नहीं हैं; दूसरे आपके मेम्बरोंमें भी मतभेद होने लगा है। कई मेम्बर तो खुल्लमखुल्ला शत्रुके गोलोंकी सराहना कर रहे हैं। मैंने स्वयं कई पण्डितोंके मुँहसे सुना है कि, भद्रबाहुसंहिता जाली ग्रन्थ है, उसकी समालोचना उचित ही की गई है और त्रिवर्णाचारादि धूर्त भट्टारकोंके बनाये हुए हैं। इससे जान पड़ता है कि शत्रुकी भेदनीति काम कर गई। अब वह दिन दूर नहीं है, जब आप लोगोंमें भी रूस सरीखी फूट फूट निकलेगी और यह सुकोमल अन्धश्रद्धाका राज्य कठोर 'परीक्षा' के पंजेमें जा फँसेगा।" इसका उत्तर क्या आया है, सो मुझे पढ़नेको नहीं मिला। इतना सुना है कि शास्त्रीय परिषत् अपनी 'सारे दिनमें ढाई कोस' वाली रफ्तारको कुछ तेज़ करनेवाली है।

४

विलायतमें जो योग्यता वृद्ध सेनापति लार्ड-किचनरकी समझी जाती थी, वही जैनियोंके पुराने दलमें सरनौवाले पं० रघुनाथदासजीकी है। यदि युद्धके प्रारंभमें लार्ड किचनर न होते तो इस समय फ्रान्सका नकशा ही बदल गया होता। पं०रघुनाथदासजी भी यदि जैनगटके सम्पादक न होते तो आज बाबू लोगोंने जैनसमाजको नेस्त नाबूद कर दिया होता। आपने अपने पुराने जमानेके भद्दे, बेढंगे, बेसिलसिले, पर भयंकर लेखोंकी मारसे अपने प्रतिपक्षियोंके छक्के छुड़ा दिये। आपके रौबीले चेहरे और प्रज्वलित नेत्रोंने भी बड़ा काम किया। किसीको आपके सामने खड़े रहनेका भी साहस न हुआ। इसी समय लोगोंने सुना कि, आपने अपने पदसे इस्तीफा पेश किया है! इससे वे घबड़ाये और लगे महासभाके मंत्री और जैनगजटके प्रकाशकके विरुद्ध आन्दोलन करने। यह ठहरा आन्दोलनका जमाना; इससे इन्द्रका सिंहासन डोल उठा। गोलमालकारिणी सभाके सभापतिने उसी समय महासभाके मंत्रीको एक पत्र लिखा कि लार्ड किचनरके अतल जलमें डूब जानेसे जो हानि ब्रिटिश

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एम्पायरकी हुई है, वही इस महावीरके इस्तीफा देनेसे आपकी होगी। दुनियाको आश्चर्यमें डुबानेवाले इनके पुराने हथखण्डे फिर किस्से कहानियोंमें ही रह जायँगे। समय पर चेत जाइए, नहीं तो आपको पछताना होगा। और आश्चर्य नहीं जो आप भी इस 'अनारी' पदसे अलग कर दिये जायँ। मंत्री महाशय सटपटाये और लगे खुशामद करने। सम्पादक महाशय आखिर बूढ़े ही तो ठहरे, खुशामदकी जरा सी गर्मीसे पिघलकर पानी हो गये। चटसे लिख बैठे—मैं अपना इस्तीफा बड़ी खुशीसे वापस लेता हूँ। नौजवान प्रकाशकको हँसी आ गई। उसने तत्काल ही इस अनोखे इस्तीफेको प्रकाशित कर दिया। झगड़ा तै हो गया। पुराने दलमें खुशियाँ मनाई जाने लगीं और बाबू लोगोंकी नानी मर गई।

—श्रीगड़बड़ानन्द शास्त्री।

शास्त्र-प्रामाण्य।

परोक्ष प्रमाणके पाँच भेदोंमें आगम या शास्त्र भी एक प्रमाण है। यह भी वस्तुके सच्चे स्वरूपको जाननेका एक साधन है। परन्तु इसको एक मर्यादाके भीतर ही प्रमाणता है। शास्त्रप्रामाण्यका यह मतलब नहीं है कि, इसके माननेवाले अपनी सदसद्विवेकबुद्धिको—खरा-खोटा पहचाननेकी शक्तिको सर्वथा ही तिलाञ्जुलि दे देवें और शास्त्रके नामसे वे चाहे जिसकी आज्ञाको सिर-पर चढ़ाने लगें। शास्त्रोंके आगे मस्तक झुकानेके लिए हम सदा प्रस्तुत हैं, परन्तु पहले हमें यह जान लेना होगा, इस बातकी परीक्षा कर लेनी होगी कि वे वास्तवमें शास्त्र हैं—शास्त्रोंके आप्तप्रणीत आदि लक्षणोंसे युक्त हैं; कहीं शास्त्रोंके नामसे अन्धश्रद्धालुओंके बाजारमें चलनेवाले नकली सिक्के तो नहीं हैं। शास्त्रोंके प्रति जनसाधारणकी जो भक्ति और श्रद्धा है, वह इतनी बहुमूल्य और लुभानेवाली है कि उसको प्राप्त करनेको चाहे जिसका मन मचल सकता है—चाहे जिसकी इच्छा हो सकती है कि हम इनके द्वारा लोगोंकी श्रद्धा और भक्तिका उपभोग करें और अपना स्वार्थ साधन करें। अतएव हमें इस विषयमें बहुत ही सावधान रहनेकी आवश्यकता है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि इस समय इस प्रकारके न जाने कितने पोथे शास्त्रोंका नाम धारण करके हमारे यहाँके सरस्वती-भण्डारोंके बहुमूल्य वेष्टनोंके परदोंमेंसे हमारी विवेकबुद्धि पर तीव्र कटाक्षपात कर रहे हैं—व्यंग्यकी हँसी हँस रहे हैं।

जब तक हममें श्रद्धा और भक्तिके साथ साथ विवेकबुद्धि भी रही, तबतक इस आगम-प्रमाणतासे हमें यथेष्ट लाभ होता रहा; परन्तु ज्यों ही हमारी श्रद्धा और भक्तिने विवेकका साथ छोड़ा—वह अन्धश्रद्धा या अन्धभक्तिके रूपमें परिणत हो गई, त्यों ही इससे हमारी दुर्दशा होना शुरू हुई। जहाँ हम पहले ज्ञानके उपासक थे, सत्यके अनुयायी थे, वहाँ शास्त्रनामधारी जड़ वाक्योंके भक्त बन गये। अमुक पदार्थका स्वरूप वास्तवमें क्या है, इसके स्थानमें अमुक शास्त्रमें वह कैसा बतलाया गया है, हम इसकी चिन्तामें रहने लगे। शास्त्रोंको वह अधिकार प्राप्त हो गया, जो थोड़े समय पहले रूस-सम्राट् ज़ारको प्राप्त था। उनके वाक्य ही सर्वोपरि शासक बन गये। इधर अच्छे ज्ञानियों और अधिकारियोंकी कमी हो रही थी। फिर क्या था, अन्धाधुन्धी शुरू हो गई। शासनका लोभ साधारण नहीं होता। जो अपात्र और अयोग्य थे उन्होंने भी इस लोभके फेरमें पड़कर शास्त्रोंकी रचना करनी शुरू कर दी और उन्हें बहुमूल्य वेष्टनोंसे वेष्टित करके सरस्वतीमन्दिरोंमें स्थापित कर दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसी दशामें हमें केवल शास्त्र या आगमका नाम सुनते ही हथियार न फेंक देना चाहिए। यदि ऐसा करोगे तो याद रक्खो, मिथ्यात्वकी चुंगलमें फँसे विना न रहोगे। तुम अपनेको समझते भले ही सम्यग्दृष्टियोंके शिरोमणि रहो, पर वास्तवमें घोर मिथ्यादृष्टि हो जाओगे। जिसने विवेकबुद्धिको आलेमें रख दिया है, खरे और खोटेकी पहिचान भुला दी है और जो जड वाक्योंका गुलाम बन गया है वही यदि सम्यग्दृष्टि है, तो फिर सम्यग्दृष्टित्वकी महिमा ही क्या रही? ऐसा सम्यग्दर्शन क्या कोई बड़ा मारी प्रार्थनीय गुण हो सकता है? शास्त्रोंको मानो, मस्तक पर चढ़ाओ, पूजो; इसके बिना आत्मकल्याण नहीं हो सकता, सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके लिए ये बहुत ही अच्छे साधन हैं; परन्तु यह ध्यानमें रक्खो कि कागज या ताडपत्र पर लिखा हुआ सब ही कुछ शास्त्र नहीं है। भगवान् स्मन्तभद्रने शास्त्रका लक्षण यह किया है:-

आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम्॥

विविध प्रसंग।

१ विद्वानोंकी कदर।

'दिगम्बर जैन' के गतांक नं० ११ में, 'श्रीआत्मानंद जैन ट्रैक्ट सोसायटी अम्बाला' की ओरसे, एक नोटिस प्रकाशित हुआ है, जिसका शीर्षक है 'विद्वानोंको इनामकी सूचना' और वह नोटिस इस प्रकार है—

'जो सज्जन "जैनसंध्या (प्रतिक्रमण) का रहस्य" इस विषय पर हिन्दी भाषामें लेख लिखकर भेजेंगे उनमेंसे जिसका लेख उत्तम होगा उसको यह सोसायटी १०) इनाम देगी। लेख फुल्सकेप कागजके २० पृष्ठसे कम न हो और ३१ (?) नवंबरतक सभापति श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी अम्बाला शहरको भेजना चाहिए। सर्वोत्तम लेखको छपवाने और स्वाधीन रखनेका सर्व हक सोसायटीको होगा।'

इस नोटिसको पढ़कर शायद कुछ भोले भाईयोंने यह समझा हो कि उक्त सोसायटीने विद्वानोंकी कदर करना प्रारंभ किया है और वह जरूर उत्तमोत्तम लेखकोंद्वारा अच्छे अच्छे निबन्ध तय्यार कराकर उन्हें प्रकाशित करनेमें शीघ्र समर्थ होगी। परन्तु यह निरी भूल और कोरा ख्वाब खयाल है। सोसायटीके इस आचरणसे उससे ऐसी आशा रखना बिलकुल फिजूल और निर्मूल है। उसके इस आचरणको कदर नहीं, विद्या और विद्वानोंका, एक प्रकारसे अपमान कहना चाहिए। परन्तु अपमान हो या सम्मान, इसमें संदेह नहीं कि, सोसायटीने यह नोटिस निकालकर अपनी योग्यताका खासा परिचय दिया है। उसकी दृष्टि कितनी संकीर्ण और कितनी अनुभवशून्य है, इसका पता भी इस नोटिससे भले प्रकार लग जाता है। जान पड़ता है कि, सोसायटीको अभीतक यह भी मालूम नहीं कि 'रहस्य' कहते किसे हैं; और वह कितने गहरे अध्ययन, मनन, अनुभव और परिश्रमसे सम्बन्ध रखता है। शायद उसने कहींसे रहस्यका सिर्फ नाम सुन लिया है और इस लिए वह उसे बच्चोंका एक खेल समझती है। तभी उसने किसी विद्वानसे विनय, अनुनय, और प्रार्थना आदि करनेकी जरूरत न समझकर, उत्तमसे उत्तम निबंधके लिए एकदम दस रुपयेकी भारी रकमका इनाम निकाल दिया है! हमारी समझमें यदि सोसायटी मूल्य देकर पाँचसौ रुपयेमें भी ऐसा एक सांगोपांग रहस्य तय्यार करा सके, जिसे वास्तवमें जैनसंध्यावंदनका रहस्य कहना चाहिए, तो उसे अपनेको भाग्यशालिनी समझना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु पाँचसौ रुपयेकी बला तो बहुत दूर है, सोसायटीकी संकुचित दृष्टिमें, ऐसे निबन्धके लिए, यह दस रुपयेका इनाम भी अधिक जान पड़ता है; और इस लिए वह इन दस रुपयोंमें यहाँतक हक प्राप्त करना चाहती है कि स्वयं लेखकको उस निबन्धके छपवाने या छपवानेके लिए किसी दूसरेको इजाजत देनेका भी अधिकार न रहेगा ! ! ऐसी हालतमें कहना न होगा कि सोसायटीकी विवेकदृष्टिमें लेख लेख सब समान हैं—एक कहानी और तात्विक-विवेचनमें परस्पर कोई भेद नहीं—जैसा पहाड़ खोदकर नहर निकालना वैसा ही एक राजवाहेमेंसे कूल (नाली) निकाल देना दोनों बराबर हैं ! ! !

जिस समाजकी सभा सोसायटियाँ भी ऐसी ऐसी कदरदान और गुणग्राहक हों उसके उद्धारमें फिर भला विलम्बका क्या काम ! हमारी रायमें अच्छा हो यदि उक्त सोसायटी अपनी ऐसी उदारता और कदरदानीकी विचारतरंगोंको गुप्त ही रक्खा करे, जिससे उन्हें पेपरोंमें प्रकाशित करके, उसे व्यर्थ ही विद्वत्समाजके सम्मुख हँसी और लज्जाका पात्र तो न बनाना बड़े। इसमें संदेह नहीं कि आजकल रहस्य, मीमांसा, परीक्षा और तात्त्विक विवेचनात्मक निबंधोंके लिखे जानेकी बहुत बड़ी जरूरत है। ऐसे निबंधोंसे न सिर्फ जैनसमाज बल्कि समूचा भारतदेश प्रायः शून्य है। जिस समय देशमें आज्ञाप्रधानताका युग प्रवर्तित था, उस समय विना ऐसे निबंधोंके भी काम चल जाता था। परन्तु अब इस परीक्षाप्रधानी युगमें ऐसा होना एक प्रकारसे असंभव है। इस लिए ऐसे निबंधोंके लिखाये जानेकी बहुत बड़ी जरूरत है। परन्तु उनके लिखानेका यह मार्ग नहीं है। इतने भारी काम ऐसे ऐसे क्षुद्र नोटिसों द्वारा कभी साध्य नहीं हो सकते। उनके लिए बडे बड़े आयोजनोंकी जरूरत हैं। खास खास विद्वानोंसे मिलकर पत्रव्यवहार करके और सर्व प्रकारकी सामग्रीकी सहायताका पूर्ण प्रबंध करके उन्हें उन कामोंमें लगाना चाहिए और इस बातका खास खयाल रखना चाहिए कि वे विद्वान् निराकुलतापूर्वक अपने कार्योंका संपादन करते रहें। ऐसा प्रयत्न होने पर यथेच्छ निबंध लिखे जा सकते हैं, और समाज तथा देशमें एक प्रकारसे ठोस कामोंकी नीव पड़ सकती है। आशा है कि, उक्त सोसायटी तथा इस प्रकारकी दूसरी जैनसंस्थायें भी इस नोटसे कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगी और अपने कामोंका मार्ग मालूम करेंगी।

—जुगलकिशोर मुख्तार।

२ खाद्य पदार्थोंमें मिलावट।

संसारके सभी देशोंमें खाद्य पदार्थोंकी रक्षाके लिए बड़े कड़े नियम हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें खाद्याखाद्यविचार पर बहुत कुछ लिखा गया है और बहुत अच्छा लिखा गया है। कुछ समय पहले अँगरेजी पढ़े लिखे लोग अपने धर्म्मग्रन्थोंकी उन सारपूर्ण बातोंका मजाक उड़ाया करते थे। किन्तु भला हो योरपके विज्ञानाचार्य्योंका कि जिन्होंने नित्य नये सिद्धान्त निकाल कर कीटाणुवाद आदि अनेक तथ्यपूर्ण सिद्धान्तोंका आविष्कार कर दिया। बाज़ारकी चीजें खाना, जूते और कपड़े पहने भोजन करना अब विज्ञानद्वारा भी अनुचित ठहरा दिया गया है। बेचारे स्मृतिकारों और आचार्य्योंकी इज्जत रह गई। चौकेकी नष्टप्राय प्रथा अब फिर अपने असली रूपमें प्रकट होने लगी है।

किन्तु अब तक खानेके उन पदार्थोंके विषयमें जिनमें धूर्त्त और स्वार्थान्ध व्यवसायी अन्य अनावश्यक ही नहीं स्वास्थ्यनाशक पदार्थों की मिलावट करके देशके स्वास्थ्यका नाश कर रहे थे हमारा ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारी गवर्नमेन्ट ने भी उस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया था। किन्तु हर्षकी बात है कि हमारे देशके कुछ समझदार लोगोंने इस अत्यन्त आवश्यक आन्दोलनको उठाया है और यथानियम गवर्नमेन्टने उनका साथ दिया है। जो लोग समाचारपत्र पढ़ना पाप नहीं समझते उन्हें यह विदित ही होगा कि कलकत्तेमें मिश्रित घीके विषयमें कैसा आन्दोलन हुआ है। हम चाहते हैं कि इस तरहका आन्दोलन *हर प्रान्त, हर शहर, हर गाँव और हर घरमें* हो। जिन चीजों पर हमारा स्वास्थ्य निर्भर है, जो हमारे रक्तको बनाती हैं, उनमें यदि कोई मिलावट करता है—नहीं, विष मिलाता है तो हमें उसके इस आचरण पर जितना क्रोध आये थोड़ा है। हमें उसके प्रतीकारके लिए कोई बात उठा न रखनी चाहिए। यदि अच्छी तरह आन्दोलन किया जाय, हिन्दू मुसलमानोंको बता दिया जाय कि घीमें चर्बी मिलती है, गाय भैंसकी ही नहीं सुअर और साँप तककी चर्बीका उसमें सपिण्डन होता है तो कोई कारण नहीं कि भारतकी ये धर्मप्राण प्रधान जातियाँ इस तरहके घी या किसी अन्य पदार्थको न छोड़ें। पर इसके लिए कुछ स्वार्थत्यागकी आवश्यकता है। उससे भी अधिक स्वादत्यागकी है। जो लोग बाजारकी मिठाइयाँ खाते हैं उन्हें चाहिए कि अपनी इस बुरी आदतको ठीक करें तभी तो ऊँची दूकानधारी हलवाइयोंको फीकी मिठाइयाँ बनानेकी धूर्त्तता छोड़ना पड़ेगी। हमें चाहिए कि उत्सव या त्यौहारोंको खूब सादगीसे सम्पन्न कर लें। वृथा आडम्बरके चक्रमें पड़ कर धर्म्मकी हानि न करें। देशके वैज्ञानिकोंका कर्त्तव्य है कि वे घीके जोड़की कोई चीज बतावें। जिन्हें शुद्ध घी मिलता है वे आनन्दसे उसे खायें, किन्तु जो उसे नहीं खरीद सकते हैं वे "अभावे शालिचूर्णं वा" की तरह उस शुद्ध चीजसे अपना काम निकाल लें; तभी इन धूर्त्त व्यवसायियोंका मुँह काला और पेट पतला होगा।

घी ही नहीं, और भी खानेकी जिन जिन चीजोंमें मिलावट होती है उसके प्रतीकारके लिए हमें सचेष्ट होना चाहिए। तभी अल्पायु भारतवासियोंकी रक्षा होगी। —ज्वालादत्त शर्मा। (वैद्यसे)

---

३ घृतके बदले दूसरे पदार्थ।

इस समय जब कि शुद्ध घृतका मिलना बड़ा दुष्प्राप्य हो गया है और अनेक प्रकारके हानिकारक और अभक्ष्य पदार्थोंके द्वारा बनाया हुआ घृत नामक विषाक्त पदार्थ सर्वत्र प्रचलित हो रहा है, ऐसी अवस्थामें घृतका सर्वथा त्याग कर देना ही उचित जान पड़ता है। घृतके बदले दूसरे पदार्थों से भी काम चल सकता है। तिलीका तेल, मूँगफलीका तेल, नारियलका तेल, आदि कई तेल घृतके बदले काममें लाये जा सकते हैं। यद्यपि मिलावटी घृतमें भी ये पदार्थ मिलाये जाते हैं, परंतु उसमें कई पदार्थोंका विरुद्ध संयोग होनेसे वह विषके समान हो जाता है। उपर्युक्त तेल पृथक् पृथक् रूपमें ही अच्छा गुण करते हैं। तिलीका तेल घृतकी अपेक्षा अधिक बलकारक है। इस लिए लोग इस तेलका व्यवहार अधिकतासे करते हैं। तथापि तेल अधिक उष्ण और उग्रवीर्य्य होनेके कारण सब प्रकृतिके मनुष्योंके अनुकूल नहीं पड़ता। सरसोंका तेल भी खानेमें अच्छा है, पर यह तिलके तेलसे भी अधिक तीक्ष्ण और उष्ण है; इस कारण सब लोग इसका उपयोग नहीं कर सकते। धुले तिलोंका तेल साधारण तिलोंके तेलकी अपेक्षा अधिक सौम्य है। इस लिए यह वैसी उष्णता, दाह आदि विकार पैदा नहीं करता। बहुत लोग तेलको नमक, क्षार, हलदी आदि पदार्थोंके द्वारा फाड़-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर घृतकी समान स्वच्छ बनाते हैं। फटे हुए तेलमें तेलकी गंध नहीं रहती और सामान्य तेलकी अपेक्षा यह कुछ हलका भी हो जाता है, इस लिए घृतके बदलेमें व्यवहार किया जा सकता है। घृतके अभावमें मूँगफलीका तेल भी व्यवहार किया जा सकता है। मूँगफलीका तेल पौष्टिक है और इसमें वैसी तीक्ष्णता या उष्णता भी नहीं है। मूँगफलीका तेल, खसखस और खरबूजोंकी गिरीके तेलसे अतिशय श्रेष्ठ है। बिनौलेका तेल अत्यंत पुष्टिकारक और जठराग्निके बलकी वृद्धि करता है। बिनौलेके तेलमें भी मूँगफलीके तेलकी समान पौष्टिक तत्त्व अधिक है और यह मूँगफलीकी समान सस्ता पड़ता है। नारियलका तेल अत्यंत बल वीर्य्यवर्द्धक और पुष्टिकारक है। यह अन्य तेलोंकी अपेक्षा निर्दोष है और उग्रवीर्य भी नहीं है। इस लिए इसका सब लोग मजेमें व्यवहार कर सकते हैं। कितने ही डाक्टर इसको कार्ड लिवर आयलके समान पौष्टिक और बलवर्द्धक मानते हैं। दाल, शाकादि व्यंजन और सब प्रकारके पकवान, मिठाई वगैरह पदार्थ इसके द्वारा अच्छे प्रकार तयार किये जा सकते हैं। यद्यपि नारियलके तेलमें एक प्रकारकी नारियलकी कुछ गंध आती है, परन्तु वह उसके ताजे तयार किये हुए पदार्थोंमें नहीं आती। दुःख है कि यह तेल रोटीके साथ या दालमें डाल कर नहीं खाया जा सकता। (वैद्यसे उद्धृत।)

---

४ ब्रह्मचारीजी और पुनर्जन्मका सिद्धान्त।

जैनमित्रमें ता० ८ अगस्तके जयाजी प्रतापसे एक पुनर्जन्मकी विस्तृत कथा उद्धृत की गई है जिसका संक्षिप्त सार यह है—"भिण्ड (ग्वालियर) से ७ मीलकी दूरी पर नुनहटा एक छोटासा गाँव है। वहाँके काशीराम पटवारीकी छोटेलाल ठाकुरसे शत्रुता हो गई। काशीरामने जमींदारीके कागजोंमें कुछ ऐसी लिखा पढ़ी कर दी थी जिससे छोटेलालको बहुत हानि पहुँची थी। एक दिन मौका पाकर छोटेलालने काशीरामका काम तमाम कर दिया और वह भाग गया। काशीराम घोड़ी पर सवार होकर कहींको जा रहा था। एक पीपलके पेड़के पास पहुँचने पर छोटेलालने उसे गोली मारी, और जब वह नीचे गिर पड़ा, तब उसकी दाहिने हाथकी उँगलियाँ काट डालीं जिनकी सहायतासे लिखकर उसने उसे हानि पहुँचाई थी। ६ नवम्बर १९०८ को काशीराम मारा गया। इसके दो महीने और २५ दिनके बाद बीसलपुरामें—जो नुनहटासे ६–७ कोस दूर है—मिहीलाल ब्राह्मणके सुखलाल नामका एक लड़का पैदा हुआ। इसके दाहिने हाथकी छोटी उँगली आधी, अँगूठा एक चौथाई और बाकी उँगलियाँ बिलकुल नहीं हैं। छातीमें एक गोली जैसा निशान है और वहाँकी कुछ हड्डियाँ भीतरकी ओरको मुँड़ी हुई हैं। जब यह लड़का तीन वर्षका हुआ और बोलने लगा, तब उसके बापने एक दिन पूछा कि विधाता क्या तेरी उँगलियोंको बनाना भूल गये? उसने कहा कि नुनहटाके छोटेलाल ठाकुरने मेरी उँगलियाँ काटी थीं। मैं पहले जन्ममें कायस्थ था और काशीराम मेरा नाम था। मैं घोड़ी पर सवार था, तब मुझे बन्दूक मारी थी और फिर मेरा हाथ काटा था। पीपलके पेड़के पास मेरी जान ली गई थी। इस समय यह लड़का ८–९ वर्षका है। ग्वालियर स्टेटके किसी राजकर्मचारीने इस मामलेकी जाँच करके ये सब बातें प्रकाशित कराई हैं। उन्होंने लड़केके मा-बापके तथा दूसरे कई आदमियोंके बयान लिये हैं और उन सबसे यह नतीजा निकाला है कि यह मामला बनावटी नहीं है। क्योंकि इस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तरह झूठा किस्सा गढ़ लेनेका कोई कारण नहीं मालूम होता। जो लोग पुनर्जन्मके सिद्धान्तका अध्ययन करनेवाले हैं, उनके लिए यह विचार करने योग्य घटना है।"

इस उद्धृत लेखके नीचे ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीका एक नोट लगा हुआ है। उसको हम यहाँ अक्षरशः उद्धृत करते हैं—"ऊपरका बयान असत्य नहीं मालूम होता; यह संभव है कि २ महीने २५ रोज तक इसके जीवने कोई पशुपर्याय धारण कर ली हो। जैनसिद्धान्तसे ऐसा होना व जातिस्मरणद्वारा पूर्व बात याद आना प्रमाणित है।"

इस नोटके पढ़ चुकने पर पाठकोंको विचार करना चाहिए कि जैनधर्मके पुनर्जन्मके सिद्धान्तसे उक्त घटना कहाँ तक मेल खाती है। सुखलालका जन्म ३१ जनवरी सन् १९०९ को हुआ है और जैसा कि उसकी माँने कहा है, वह ९ महीने पूरे होने पर १० वें महीनेमें पैदा हुआ है। अर्थात् १ मई सन् १९०८ के लगभग वह अपनी माताके गर्भमें आया होगा। जैनसिद्धान्तके अनुसार गर्भाधान होनेके साथ ही माताके गर्भस्थानमें जीवकी स्थिति हो जाती है। चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेदके ग्रन्थोंका भी यही सिद्धान्त है। अब देखिए कि काशीरामकी हत्या कब हुई थी? वह ६ नवम्बर १९०८ को अर्थात् सुखलालके गर्भमें आनेके कोई ६ महीनेके बाद मारा गया है। तब क्या वह मरनेके पहले ही गर्भमें आ गया था? ब्रह्मचारीजी जैनमित्रका सम्पादन इतनी जल्दी करते हैं, और उन्हें जैनसिद्धान्त पर चलता-मलिनता-अगाढ़ता-रहित ऐसा 'भयंकर' विश्वास है कि उन्हें किसी विषय पर अधिक विचार करनेकी आवश्यकता ही नहीं मालूम होती। विषयके भीतर प्रवेश करना—कुछ गहरे पैठना—उनकी समझमें व्यर्थ है। वे पं० आशाधरके 'कुतः श्रेयोऽति-चर्चिनाम्' सिद्धान्तके माननेवाले हैं। ऊपरका नोट इस बातका बहुत बड़ा प्रमाण है। आपने उठाई कलम और लिख दिया कि काशीरामके जीवने २५ रोज तक कोई पशुपर्याय धारण कर ली होगी। यह नहीं सोचा कि मनुष्यों और पशुओंको कुछ समयतक गर्भमें भी रहना पड़ता है। जिस समय किसीका जन्म होता है, ठीक उसी समय वह दूसरे स्थानसे च्युत होकर आया हुआ नहीं होता; किन्तु उसके कुछ महीनों पहलेसे वह गर्भमें आ गया होता है। और पशुपर्यायकी तो एक ही कही! एक ही पर्यायको धारण करनेके लिए तो दिन पूरे नहीं हैं, पर आप बीचमें एक पशुपर्याय और भी धारण करा देते हैं। हम यह नहीं कहते हैं कि ब्रह्मचारीजी पुनर्जन्म-सम्बन्धी इन मोटी मोटी बातोंको जानते नहीं हैं; नहीं वे जैनधर्मके इस सिद्धान्तसे अच्छी तरह परिचित होंगे; परन्तु एक तो उन्हें अधिक विचार करनेका अभ्यास नहीं है, दूसरे वे इस प्रकारके प्रमाणोंसे—जिनपर वर्तमानकी जनता कुछ अधिक विश्वास करती है—भरपूर लाभ उठा लेना चाहते हैं और इस लाभके लोभमें वे किसी 'ढीले-ढाले' ठीक न बैठते हुए प्रमाणको भी व्यर्थ नहीं जाने देना चाहते। जैनमित्रमें इस प्रकारके नोट अकसर निकला करते हैं और आशा है कि आगे भी निकलते रहेंगे।

५ रीति-रवाजोंकी गुलामगिरी।

मनुष्य धर्मकी उतनी परवा नहीं करता, जितनी कि रीति-रवाजोंकी करता है। वह धर्मका नहीं किन्तु रीति-रवाजोंका गुलाम है। संसारमें धर्मके नामसे जितने काम हुए हैं, या होते हैं, मत समझो कि वे सब धर्मके ही लिए हुए हैं। नहीं, यदि विवेकदृष्टिसे देखोगे, तो उनमेंसे अधिकांशके भीतर यह रीति-रवाजोंकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुलामगीरी ही दिखलाई देगी। क्या आप इस समय जितने जैनियोंको देखते हैं, उन सबको जैनधर्मके अनुयायी समझते हैं ? यदि आप ऐसा समझते हैं तो कहना होगा कि आप रीति-रवाजोंके अनुसरणको ही धर्म समझते हैं। वास्तवमें ये लोग जैनधर्मके नहीं; किन्तु उन रीति-रवाजोंका अनुसरण कर रहे हैं, जो जैनी कहलानेवालोंकी जातिमें बहुत समयसे चले आ रहे हैं। वे यह नहीं सोचते और सोचना पसन्द भी नहीं करते कि ये सब रीति-रवाज जैनधर्मके अनुकूल हैं या नहीं। यही कारण है जो उनमें ऐसे बीसों रीति-रवाज चल रहे हैं, जो जैनधर्मसे सर्वथा प्रतिकूल हैं; पर ऐसे नये रीति-रवाज नहीं चल सकते जो जैनधर्मके अनुकूल हैं और सब तरहसे आवश्यक हैं। रीति-रवाजोंका यह चलाना और बन्द करना जीवित समाजोंमें होता है; पर हमारे समाजकी जीवनी शक्ति मूर्छित हो रही है। वह एक कुँभारके चक्रके समान पूर्व-प्रेरित शक्तिसे केवल एक ही दिशाको चला जा रहा है। उसमें अपनी दिशा बदलनेकी शक्ति नहीं है। समाजके शुभचिंतकोंको अपने प्रयत्नोंका चरम उद्देश्य 'इसी शक्तिको प्राप्त करा देना' बनाना चाहिए।

बम्बईमें अभी थोड़े ही दिन पहले अजमेरके स्वर्गवासी धनिक राय बहादुर सेठ नेमीचन्दजीका नुक्ता (तेरहीं) हुआ था। सेठजीकी बम्बईमें भी एक दूकान है, इस कारण यहाँ भी इस 'काज' का करना आवश्यक समझा गया। शायद कलकत्ता, आगरा आदिस्थानोंमें भी—जहाँ जहाँ सेठजीकी बड़ी दूकानें हैं—इसी तरहके नुक्ते किये गये होंगे। पर इनके विषयमें हम कुछ नहीं कहना चाहते। देशकी वर्तमान दरिद्रतासे सर्वथा अपरिचित और धनकी उपयोगिताको न समझनेवाले इन धनियोंसे हमें अभी आशा भी नहीं है कि, ये इस प्रकारकी फिजूलखर्चियाँ बन्द कर देंगे। हम एक ऐसी बातकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जिसका उस धर्मसे सम्बन्ध है जिस धर्मके ये लोग अपनेको स्वाभाविक 'रक्षक' समझते हैं। स्वर्गीय सेठजी दिगम्बर सम्प्रदायके शुद्धाम्नायी तेरहपंथी जैनी थे और जहाँ तक हम जानते हैं उनके उत्तराधिकारी पुत्र सेठ टीकमचन्दजी भी इसी आम्नायके माननेवाले हैं। यह वह आम्नाय है, जिसको बात बातमें मिथ्यात्वके अनुमोदनका और धर्मके जानेका डर लगा रहता है और जिसे केवल जैनेतरोंकी ही नहीं श्वेताम्बरादि जैनियोंकी शिक्षा संस्थाओंमें भी कुछ देनेमें आगा पीछा सोचना पड़ती है। इसी आम्नायके अगुए सेठजीके इस नुक्तेमें ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया और उन्हें लगभग पाँच हजार रुपया दक्षिणामें दिया गया। ब्राह्मणोंके सहस्रावधि आशीर्वादोंसे आशा है कि सेठजीकी परलोकगत आत्माको बहुत शान्ति मिलेगी ! सुनते हैं, खंडेलवाल समाजके और भी कई धनियोंने इस प्रकारके आशीर्वाद सम्पादन किये हैं। उनमें यह रीति परम्परासे चली आ रही है।

रीति-रवाजोंकी-गुलामगीरीका यह एक नोट करने लायक उदाहरण है।

---

६ उपवासोंका मूल्य।

बम्बईमें जयपुरकी तरफके एक ब्रह्मचारी प्रतिवर्ष आया करते हैं। आपका नाम पं० मूलचन्दजी है। आप किसी भट्टारकके शिष्य हैं, शायद इसी लिए 'पण्डित' कहलाते हैं। भट्टारकोंके शिष्योंका यह एक मौरूसी 'पद' है। यों 'पंडिताई' से आपका जरा भी सम्बन्ध नहीं है। आप यहाँके गुलालबाड़ीके बीसपंथी मन्दिरमें ठहरा करते हैं और सोलह कारणके ३२ उपवास किया करते हैं। पर इन उपवासोंके फलको आप अपने पास नहीं रखते, उदारतापूर्वक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसी धनी श्रावकके लिए उत्सर्ग कर दिया करते हैं। इस फलके लेनेवालेको पारणेके दिन थोड़ी सी चाँदी भेट करनी पड़ती है। पहले वर्ष सेठ चुन्नीलाल हेमचन्द जरीवालेने १००१) देकर और दूसरे वर्ष स्वर्गीय सेठ माणिकचन्दजीके परिवारवालोंने ५०१) रु० देकर यह पुण्यसम्पादन किया था। गतवर्ष जब कोई तैयार न हुआ तो सेठ चुन्नीलालजीने ही फिर ५०१) रु० भेट किये। इस वर्ष उनके भाई सेठ प्रभुदासजीने १०१) रु० देकर महाराजको पारणा कराया है। इसके सिवाय पंचायतकी ओरसे भी कुछ चन्दा करा दिया गया है। बिना कुछ भेट लिये आप 'पारणा' नहीं करते। करना भी न चाहिए; नहीं तो फिर इतने बड़े तपका महत्त्व ही क्या रहे! सुनते हैं, आप अपने निवासस्थानके पास एक मन्दिर बनवा रहे हैं और ये रुपये उसीके लिए संग्रह कर रहे हैं। यद्यपि इस बात पर विश्वास करनेका कोई कारण नहीं है; अभीतक किसीने भी यह तलाश नहीं किया है कि मन्दिर बन रहा है या नहीं, और यदि मन्दिर बन रहा है, तो उसमें कितने रुपये लगे हैं और पंडितजीके उदर-मन्दिरमें कितने समा गये हैं, फिर भी यदि मान लिया जाय कि सब रुपया मंदिरमें ही लगेंगे, तो प्रश्न यह है कि मन्दिरके निमित्त भी इस तरह 'मुँड़चिरियों' के समान जबर्दस्ती रुपया वसूल करनेमें कौनसा धर्म है? इसका अनुमोदन तो हमारी समझमें कोई भी धर्मज्ञ नहीं कर सकता। यह कोई श्रेष्ठ आचार नहीं, किन्तु अत्याचार है। पर इसमें हम पण्डितजीका कोई दोष नहीं देखते। उन्हें प्राप्ति होती है, इसलिए वे ऐसा करते हैं। दोष है हमारे भोले भाइयोंका—श्रद्धालु श्रावकोंका, जो इस तरहके दानमें पुण्य समझते हैं और ऐसे लोगोंको इस तरहके अत्याचार करनेके लिए और भी अधिक उत्साहित करते हैं।

७ महात्मा गाँधीका हिन्दी पुस्तकालय।

हमारे पाठक महात्मा गाँधी और उनके अहमदाबादके 'सत्याग्रहाश्रम' से परिचित हैं। गाँधीजी इस समय हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनाने और उसका प्रचार करनेका आन्दोलन कर रहे हैं। गुजरातके भिन्न भिन्न स्थानोंमें वे हिन्दीकी पाठशालायें खोलना चाहते हैं, जिनके द्वारा सर्वसाधारणको हिन्दीकी शिक्षा दी जायगी। आपने अपने आश्रमके प्रत्येक विद्यार्थीके लिए हिन्दीका पढ़ना आवश्यक कर दिया है। आपकी इच्छा है कि, आश्रममें हिन्दीका एक अच्छा पुस्तकालय भी स्थापित किया जाय। इस पुस्तकालयसे अन्य प्रान्तवासियोंका ध्यान हिन्दीकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित होगा और वे हिन्दीकी अच्छी अच्छी पुस्तकोंसे थोड़े बहुत परिचित अवश्य हो जाया करेंगे। दूसरे प्रान्तोंके लोग गाँधीजीसे मिलनेके लिए निरन्तर ही आया करते हैं। उनके कारण इस समय आश्रम एक तीर्थस्थान बन रहा है। हम अपने हिन्दीप्रेमी पाठकों और पुस्तकप्रकाशकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं। आशा है कि, वे उक्त पुस्तकालयके लिए हिन्दीकी अच्छी अच्छी पुस्तकें भेजनेकी उदारता दिखला वेंगे और इस हिन्दीप्रचारके कार्यमें अवश्य सहायक होंगे।

८ दर्शनसारकी रचनाका समय।

दर्शनसारकी ५० वीं गाथाके अर्थमें हमने उसके बननेका समय विक्रम संवत् ९०९ लिखा है; परन्तु उसकी वचनिकाके कर्त्ता पं० शिवजीलालने संवत ९९० लिखा है। गाथाके 'णवसए णवए' पदकी छाया 'नवशते नवके' न करके 'नवशते नवतौ' करने से यह अर्थ ठीक बैठ जाता है। वास्तवमें होना भी यही चाहिए। संवत् ९९० मान लेनेसे माथुर संघकी उत्पत्ति आदिके सम्बन्धमें जो शंकायें की गई हैं उनका भी समाधान हो जाता है। माथुर संघकी उत्पत्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विक्रम संवत् ९५३ में बतलाई गई है। संवत् ९०९ के बनेहुए ग्रन्थमें उसकी उत्पत्तिका लिखा जाना असंगत मालूम होता था, परन्तु जब दर्शनसार ९९० में बना है, तब इस शंकाके लिए कोई स्थान नहीं रहता। वचनिकामें एक बात और भी लिखी है। वह यह कि देवसेन मुनि वि० संवत् ९५१ में हुए हैं। मालूम नहीं यह समय देवसेनके जन्मका है या उनके मुनि होनेका, और इसके लिए आधार क्या है।

९ बैरिस्टर साहबका पत्र।

हरदोई, ता. १९-८-१७

प्यारे प्रेमीजी, जैनहितैषीके वर्तमान अंककी बाबत मैं आपका आभारी हूँ, और उसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। 'दर्शनसारविवेचना' नामका आपका लेख बड़ा ही चित्ताकर्षक है। इस लेखके अंतमें आपने उस भविष्यद्वाणी पर अश्रद्धा प्रगट की है जो पंचमकालके अंतमें अग्निका नाश हो जानेके सम्बंधमें है। कुछ समय बीता जब मैंने कहीं पर इस भविष्यद्वाणीको पढ़ा था, तब मुझे भी आश्चर्य हुआ था; परन्तु अब मैं इस नतीजे पर पहुँच गया हूँ कि इस कथनमें कोई भी बात बेहूदा या असंभव नहीं है। संभवतः इस कथनका जो कुछ अभिप्राय है वह यह है कि कोई ईंधन या लकड़ी नहीं बचेगी, इस वास्ते अग्नि जलाना असंभव हो जायगा। ऐसा मालूम होता है कि इस कालके अंतमें वनस्पतिके अभावमें मनुष्योंको और जो कुछ मिलेगा वह खाना पड़ेगा, और इस लिए सब लोग मांसाहारी हो जायँगे। उनको कपास भी नहीं मिलेगा और इस वास्ते वे नंगे ही रहेंगे। और जहाँ तक धर्म और राजासे सम्बंध है उनका ह्रास अभीसे होता जाता है। मेरे खयालमें हम अब भी यह बात स्पष्टरूपसे देख सकते हैं कि दुनिया निकृष्टतम अवस्थाकी ओर तेजीसे जारही है और अब कुछ थोड़ीसी ही और ऐसी दावानलोंकी जरूरत रह गई है, जैसा कि योरुपका वर्त्तमान युद्ध, जिससे हम रसातलको पहुँच जायँ।

यदि आप मेरी इस रायको छापना पसंद करें तो आप इसका समुचित हिन्दी शब्दोंमें अनुवाद करके उसे हितैषीके आगामी अँकमें प्रकाशित कर देवें।

मैं आशा करता हूँ कि आप त्रिलोकसारका हिन्दी अनुवाद शीघ्र ही प्रकाशित करेंगे। मैं उसके दर्शनोंके लिए बड़ा ही उत्कंठित हूँ।

आपका—**चम्पतराय जैन,**
बैरिष्टर-एट-ला।

बैरिस्टर साहबकी आज्ञानुसार उनके पत्रका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर दिया जाता है। यह बात समझमें नहीं आती कि इस कालके अन्तमें वनस्पतिका सर्वथा नाश कैसे हो जायगा। इसका अर्थ यह होगा कि वनस्पतिजीवोंकी सृष्टिका ही अभाव हो जायगा। पर यह संभव नहीं। इसके सिवाय त्रैलोक्यसारकी उद्धृतकी हुई गाथाओंमें अग्निका नाश हो जाना लिखा है, वनस्पतिका नहीं। आशा है कि बैरिस्टर साहब इस विषयमें कुछ विस्तारसे और सप्रमाण लिखनेकी कृपा करेंगे।

जरूरत।

एक ऐसे चतुर विद्यार्थीकी जरूरत है जो श्रीयुत **बाबू जुगलकिशोरजी** मुख्तार देवबन्द जि० सहारनपुरके पास रहकर उनसे जैनधर्मके ग्रंथोंको पढ़नेकी इच्छा रखता हो और साथ ही पबलिक सेवा करनेका जिसका भाव हो। ऐसे विद्यार्थीको सात रुपये मासिक वजीफा (स्कालर्शिप) दिया जायगा। धर्मग्रंथोंका अध्ययन करानेके साथ साथ उससे लिखने पढ़नेसम्बन्धी कुछ पबलिक सेवाका काम भी लिया जायगा। जो विद्यार्थी जाना चाहे उसे अपनी योग्यता आदिका परिचय देते हुए उक्त बाबू साहबसे पत्रव्यवहार करना चाहिए।

—सम्पादक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारे छपाये हुए नये ग्रन्थ ।

वृन्दावन कृत चौवीसी पाठ ।

यह ग्रन्थ बम्बईके सुन्दर टाइपमें अच्छे कागजों पर फिरसे छपाया गया है। छपा भी शुद्धतापूर्वक है। जिन्हें और कहींकी छपाई पसन्द नहीं उन्हें अब इस बम्बईके छपे हुए विधानको या पूजा पाठको अवश्य मँगा लेना चाहिए। मूल्य १८)

जैनपदसंग्रह ।

कविवर दौलतराम कृत पहला भाग और भागचन्दजी कृत दूसरा भाग पद-संग्रह फिरसे छपाये गये हैं। बहुत दिनोंसे ये मिलते नहीं थे। मूल्य पहले भागका ।≈) दूसरेका ।) ।

बुधजन सतसई ।

अर्थात् बुधजनजीके उपदेश, नीति, सुभाषित आदि सम्बन्धी ७०० दोहे। यह पुस्तक दुबारा छपाई गई है। मूल्य छह आने।

जैनबालबोधकके दोनों भाग ।

श्रीयुत पं० पन्नालालजीके ये दोनों भाग जैनपाठशालाओंमें बहुत ही प्रचलित रहे हैं। बहुत दिनोंसे समाप्त हो गये थे, अब फिरसे छपाये गये हैं। पहले भागसे असंयुक्त और संयुक्त अक्षरोंके शब्दोंका शुद्ध शुद्ध लिखना पढ़ना अच्छी तरह आ जाता है। दूसरे भागमें धार्मिक कथाओंके और धर्मतत्त्वोंके अच्छे अच्छे पाठ हैं। मूल्य पहले भागका ।) और दूसरे भागका ।।) ।

मनोरंजन कहानियाँ ।

इसमें छोटे छोटे बच्चोंको हँसाने और खुश करनेवाली १३ कहानियोंका संग्रह है। जो बच्चा पढ़ेगा या सुनेगा वही खुश होगा। किसी किसी कहानीको सुनकर तो बच्चे लोटपोट हो जाते हैं। मूल्य ≈)

रत्नकरण्डश्रावकाचार पद्यानुवाद ।

पं० गिरिधर शर्माकृत। खड़ी बोलीके सुन्दर पद्योंमें रत्नकरण्डका सुन्दर सरल अनुवाद। जैनपाठशालाओंमें पढ़ाये जाने योग्य। मूल्य ≈)

माणिकचन्द ग्रन्थमालाके ग्रन्थ ।

सब ग्रन्थ ठीक लागतके मूल्य पर बेचे जाते हैं। सबसे सस्ते हैं। प्रत्येक मंदिरमें इनकी एक एक प्रति अवश्य रखना चाहिए और संस्कृतके पण्डितोंको वितरण करना चाहिए:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१ सागारधर्मामृत सटीक आशाधर कृत ।≥)
२ लघीयस्त्रयादिसंग्रह अकलंकभट्टकृत ।=)
३ पार्श्वनाथचरित वादिराजसूरि कृत ॥)
४ विक्रान्त कौरवीय नाटक हस्तिमल्ल कृत ।=)
५ मैथिली परिणय नाटक ,, ।)
६ प्रद्युम्नचरित महासेनाचार्यकृत ॥)
७ आराधनासार सटीक देवसेनाचार्य कृत ।)॥
८ जिनदत्तचरित्र, गुणभद्र कृत ।)॥
९ चारित्रसार चामुण्डराय कृत ।=)
१० प्रमाणनिर्णय वादिराजसूरि कृत ।–)

बच्चोंके सुधारनेके उपाय ।

इसमें बच्चोंकी आदतें सुधारने, उन्हें सदाचारी और विनयशील बनाने, बुरेसे बुरे स्वभावके लड़कोंको अच्छे बनाने, उपद्रवियों और चिड़चिड़ोंको शान्त शिष्ट बनानेके अमोघ उपाय बतलाये गये हैं । प्रत्येक माता पिताको इसे पढ़ डालना चाहिए । इसके अनुसार चलनेसे उनका घर स्वर्ग बन जायगा । मू० ॥)

कोलम्बस ।

अमेरिका खण्डका पता लगानेवाले असम साहसी कर्मवीर कोलम्बसका आश्चर्यजनक और शिक्षाप्रद जीवनचरित । अभी हाल ही छपकर तैयार हुआ है । नवयुवाओंको अवश्य पढ़ना चाहिए । मूल्य ।॥)

मानवजीवन ।

सदाचार और चरित्रसम्बन्धी अनेक अँगरेजी, मराठी, गुजराती, बंगला पुस्तकोंके आधारसे यह ग्रन्थ रचा गया है । सदाचारकी शिक्षा देनेके लिए और सच्चे मनुष्योंकी सृष्टि करनेके लिए यह ग्रन्थ बहुत अच्छा है । इस ग्रन्थके बिना कोई घर, कोई पुस्तकालय, और कोई मन्दिर न रहना चाहिए । भाषा बहुत ही सरल और स्पष्ट है । मूल्य १।=) कपड़ेकी जिल्दका १॥=)

उस पार । प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलालरायके एक सामाजिक नाटकका अनुवाद । स्टेजपर खेलनेलायक अपूर्व नाटक है । हिन्दीमें इसकी जोड़का एक भी नाटक नहीं है । प्रारंभमें एक विस्तृत भूमिकाके द्वारा इस नाटकके प्रत्येक पात्रके चरित्रकी खूबियां दिखलाई गई हैं । मूल्य सवा रुपया ।

ग्रन्थपरीक्षा प्रथम भाग और द्वितीय भाग । लेखक, श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार । पहले भागमें जिनसेनत्रिवर्णाचार, उमास्वामिश्रावकाचार और कुन्दकुन्दश्रावकाचार इन तीन ग्रन्थोंकी और दूसरे भागमें भद्रबाहुसंहिताकी समालोचना प्रकाशित की गई है । ये सब लेख जैनहितैषीमें निकल चुके हैं । इनका खूब प्रचार होना चाहिए । मूल्य लागत मात्र रक्खा गया है । पहले भागका ।=) और दूसरे भागका ।)

मोक्षमार्गकी कहानियां । रत्नकरण्डश्रावकाचारमें जिन जिन स्त्री पुरुषोंके उदाहरण आये हैं, उन सबकी २३ कथाओंका संग्रह । यह हाल ही छपी है । मूल्य सात आने ।

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, गिरगांव—बम्बई.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org